अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-40, अंक-13, 16-28 फरवरी, 2017

28 फरवरी पुण्य-तिथि : डॉ. राजेन्द्र प्रसाद

विनम्र श्रद्धांजलि

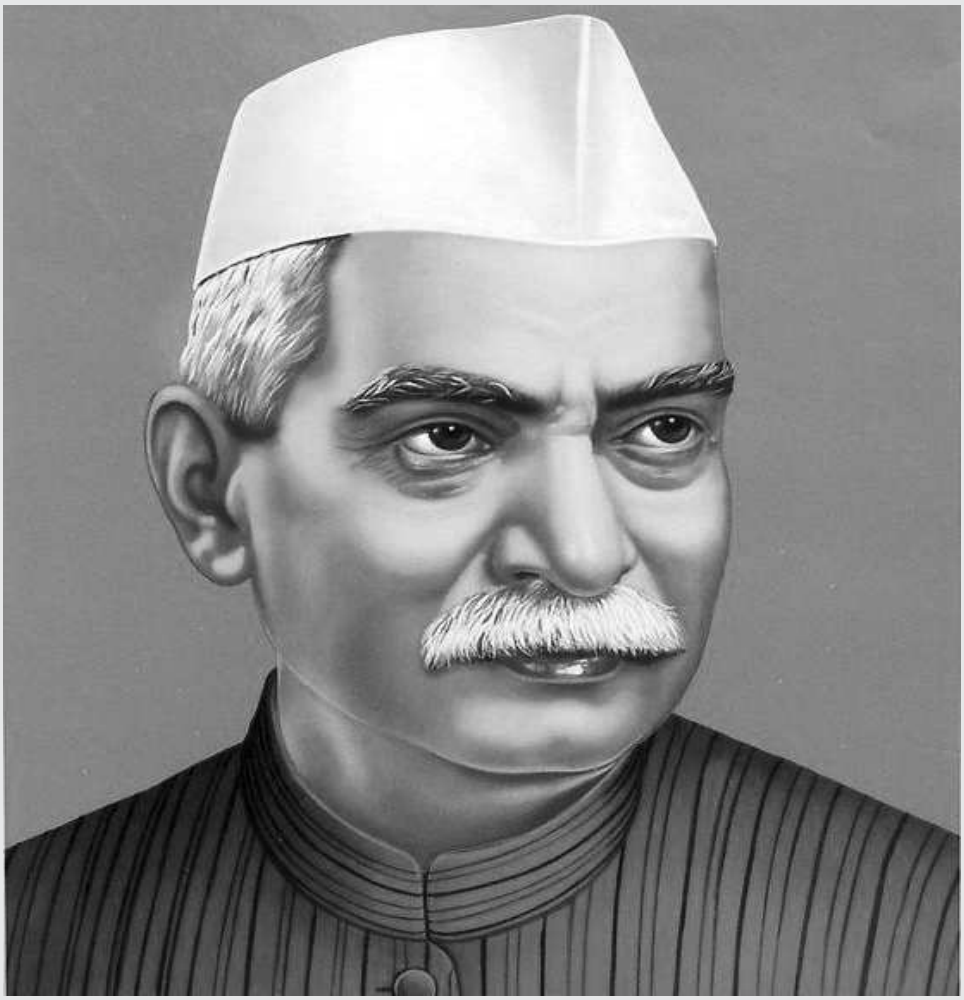

पसीने की रोटी

महान् प्रकृति की इच्छा तो यही है कि हम अपनी रोटी पसीना बहाकर कमाये। इसलिए जो आदमी अपना एक मिनट भी बेकारी में बिताता है, वह उस हद तक अपने पड़ोसियों पर बोझ बनता है। और ऐसा करना अहिंसा के बिलकुल पहले ही नियम का उल्लंघन करना है।...अहिंसा यदि अपने पड़ोसी के हित का खयाल रखना न हो तब तो उसका कोई अर्थ ही न रहे। आलसी आदमी अहिंसा की इस प्रारम्भिक कसौटी में ही खोटा सिद्ध होता है। –गांधी

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुखपत्र
सर्वोदय जगत
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 40, अंक : 13, 16-28 फरवरी, 2017

प्रधान संपादक
बिमल कुमार
मो. : 9235772595
संपादक
अशोक मोती
मो. : 9430517733

संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह भवानी शंकर 'कुसुम'

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

मूल्य	:	05 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC No. UBIN-0538353
Union Bank of India
Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. चुनाव : वंचित समूहों के लिए एक... 2
2. आप केवल खादी ही खरीदें... 3
3. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद... 5
4. एक विद्रोही अर्थशास्त्री कुमारप्पा... 7
5. अमीरी एक है बीमारी... 9
6. आपसी सौहार्द का अर्थशास्त्र बनाम... 13
7. नदी को अविरल बहने दें... 14
8. अनुपम के बिना आया नया साल... 16
9. कविताएं... 17
10. गुट निरपेक्ष आंदोलन की निरंतरता... 18
11. गतिविधियां एवं समाचार... 19
12. हर दरवाजे पहुंचायेंगे गांधी-विचार... 20

संपादकीय

चुनाव : वंचित समूहों के लिए एक छलावा

पांच राज्यों के चुनाव की प्रक्रिया जारी है। उत्तर प्रदेश उनमें सबसे बड़ा राज्य है। यहां चुनाव प्रचार में दो बातें खुलकर प्रकट हो रही हैं। एक धर्म, जाति, उपजाति आदि परम्परागत पहचानों के आधार पर मतदाता को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास तथा दूसरे बड़े-बड़े वादे। पार्टियों द्वारा अपनाये जा रहे ये दोनों प्रकार के प्रयास, एक व्यापक पूंजीवादी-बाजारवादी प्रवाह का हिस्सा है।

लोकतंत्र में लोक सम्प्रभु है। लोक की अभिव्यक्ति चुनाव के माध्यम से हो तो लोकतंत्र मजबूत होगा। लेकिन ये चुनाव इससे उलटी प्रक्रिया को मजबूत कर रहे हैं। लोक की अभिव्यक्ति के लिए लोक का संगठन होना एक न्यूनतम शर्त है। एक सर्वमान्य व्यापक मानवीय मूल्य व्यवस्था के अंतर्गत लोक संगठन का निर्माण संभव था। या विकल्प के रूप में संविधान के मूल प्रस्ताव (Preambles) के आधार पर यह सम्भव हो सकता था। किन्तु लोक-सशक्तीकरण के लिए न तो पार्टियों ने कभी कोई प्रयास किया न पार्टी दायरे के बाहर ऐसा कोई नियमित प्रयास हुआ। लोक संगठन के अभाव में लोक की अभिव्यक्ति का माध्यम न के बराबर विकसित हुआ। दूसरी ओर धर्म, जाति, उपजाति आदि परम्परागत पहचान वाली सामाजिक इकाईयां समाज में बनी हुई थीं। इस कारण सामूहिकता वर्गीकृत रूप में उपलब्ध थी। पार्टियों ने इस वर्गीकृत सामूहिकता को चुनाव में अपने-अपने हिसाब से साधना शुरू कर दिया। समाज का वर्गीकरण, पार्टियों की प्रतिस्पर्धा में, सामाजिक टूटन का यह माध्यम बनने लगा। अनेकता में एकता के बजाय, अनेकता के माध्यम से द्वेष एवं अविश्वास का वातावरण खड़ा किया जाने लगा। लोक को संगठित करने के बजाय लोक को अधिकाधिक विभाजित किया जाना लक्ष्य हो गया। स्वभाविक रूप में अब चुनाव लोकतंत्र का विद्रूप बनकर उभरने लगा है।

अधिकाधिक विभाजित लोक, न तो केन्द्रीय सत्ता के लिए चुनौती बन सकेगा और न ही पूंजीवादी व्यवस्था को चुनौती दे सकेगा। विभाजित लोक, संकीर्ण पहचानों में फंसकर व्यापक उदात्त मानवीय मूल्यों का भी वाहक बनने में असमर्थ हो जाता है। व्यापक मूल्यों के अधिष्ठान पर समाज संचालन का दबाव न रहने पर, व्यक्तिगत स्वार्थ एवं सीमित स्वार्थ उभर कर प्रमुखता से राजनीतिक व्यवस्था पर दबाव बनाने लगे। पार्टियों ने भी व्यक्तिगत स्वार्थ एवं सीमित स्वार्थों को अपने प्रचार अभियान के केन्द्र में लाना शुरू कर दिया।

पूंजीवाद के विकास के फलस्वरूप लोक अपने जीविका के संसाधनों से बेदखल किये जाने लगे। पूंजी और संसाधनों पर एक छोटे वर्ग का नियंत्रण बढ़ता गया। ऐसे में बेदखल किये गये वंचित समूहों को कुछ न कुछ 'देने' का वादा लोगों को लुभाने के लिए इस्तेमाल किया जाने लगा। सस्ता चावल, लैपटाप, साड़ी से लेकर तमाम तरह के वादे किये जाने लगे। इन वादों के पीछे एक सामान्य विचार अंतर्निहित है। वह यह कि अर्थव्यवस्था में लोगों की ऐसी भागीदारी सम्भव नहीं है कि लोग अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें। पूंजी और संसाधन ही नहीं, आय भी मुख्य रूप से छोटे तबके की ही बढ़ रही है। बाकी को सरकार के वादों पर ही निर्भर करना पड़ेगा।

एक खास तरह का मानस बनाया जा रहा है। पूंजी, संसाधनों एवं आय के व्यापक हिस्से से बहुसंख्य जनता वंचित रहे तथा इन वंचितों को दो स्तर पर सक्रिय होने से रोका जाये। एक तो यह कि धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्रीयता आदि के आधार पर इनमें अधिकाधिक विभाजन व द्वेष विकसित किया जाये। दूसरे, इन्हें कुछ 'वादों' के माध्यम से देने का आश्वासन देकर यह दिखाया जाये कि इनके भले के लिए राजनीतिक प्रतिष्ठान प्रतिबद्ध है। इस मायने में चुनाव इन वंचित समूहों के लिए एक छलावा से अधिक कुछ नहीं हैं।

लोक के सशक्तीकरण के लिए जो विचारधारा प्रतिबद्ध है, उस विचारधारा को मानने वालों को निरंतर आंदोलन की एक रणनीति विकसित करनी होगी। लोक के हाथ में पूंजी और संसाधन आयें तथा कारपोरेटी शक्तियों के नियंत्रण से इन्हें बाहर निकाला जाये, यह पहली शर्त है। लोक के नियंत्रण में पूंजी एवं संसाधन हों, तब विकास की रूपरेखा कैसी हो, उस विकास का रास्ता बनाना होगा। तीसरे विकास के फलस्वरूप बढ़ी आय का अधिकांश हिस्सा वर्तमान एवं भविष्य के लोक के लिए होगा, यह सुनिश्चित तथा इन सबके लिए लोक को विभाजित करने वाली राजनीति का निषेध करना होगा।

बिमल कुमार

आप केवल खादी ही खरीदें

❑ गांधी

बड़े खेद का विषय है कि खादी-प्रदर्शनी के आयोजन की आवश्यकता महसूस की गयी। यह कदापि बधाई देने का विषय नहीं है, क्योंकि आमतौर पर प्रदर्शनियां ऐसी वस्तुओं की लगायी जाती हैं, जो लोकप्रिय न हों। आम किस्म के चावल अथवा गेहूं या विदेशी तथा मिल में बने कपड़े की प्रदर्शनी लगाने की कभी आवश्यकता अनुभव नहीं की गयी। क्योंकि देश का कोई भी कोना ऐसा नहीं होगा, जहां ये वस्तुएं पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध न हों। आयात किए हुए विदेशी कपड़े अथवा मिल में बने हुए देशी कपड़े में कोई विशेष अंतर नहीं है। मेरी नजरों में दोनों ही बराबर हैं। क्योंकि दोनों ही दशाओं में पैसे का बहुत बड़ा भाग अमीर एवं बड़े-बड़े मिल-मालिकों के पास चला जाता है। गरीब मजदूरों को बहुत ही कम, वस्तुतः बहुत ही थोड़ा पैसा मिलता है। जब मैंने खद्दर का काम शुरू किया था तो अहमदाबाद के बहुत से मिल-मालिकों ने, जिनमें से बहुतों को मैं अपना मित्र समझता था, कहा कि यह सब व्यर्थ है। उससे आपकी इच्छा के विपरीत लोगों के बजाय हम मिल-मालिकों को बहुत अधिक लाभ होगा, क्योंकि खादी कभी हमारा मुकाबला नहीं कर सकेगी। *मिल-मालिकों ने सचमुच ही प्रतियोगिता में खादी को खत्म करने के लिए कपास के बचे हुए कचरे से एक नई किस्म का कपड़ा तैयार कर दिखाया। इन मिल-मालिकों ने ही अपने कपड़े की कीमतें बढ़ाकर और इसके अलावा बहुधा विदेशी उत्पादन को स्वदेशी के नाम पर धोखे से लोगों के गले मढ़कर बंगाल में स्वदेशी को खत्म कर दिया।* उन्होंने मुझे इस बात की याद दिलायी और ठीक ही दिलायी कि उनके मिल उद्योग का आधार देश-भक्ति अथवा जनता के प्रति प्रेम नहीं है; वरन वह उनके लिए केवल व्यापार और उद्यम के रूप में ही है; और उसका उद्देश्य अपने हिस्सेदारों को ज्यादा से ज्यादा लाभांश देना है। परंतु जब बाद में उन्हें पता चला कि स्वदेशी आंदोलन के दिनों में जो कुछ किए जाने की कोशिश की जा रही थी, मैं उससे बिलकुल भिन्न दिशा में प्रयत्न कर रहा हूं तो वे मेरे प्रयासों की सराहना करने लगे।

आप लोगों से आग्रह करता हूं कि आप विदेशी अथवा मिल में बने हुए कपड़े को उपयोग में न लायें। यह आपका धर्म है कि आप खादी, केवल खादी ही खरीदें। जैसे केवल पचास वर्ष पूर्व आपके वस्त्र केवल गांवों में बनते थे, उसी तरह अब फिर होना चाहिए। मैं चरखा, हाथ-कताई और हाथ-बुनाई के उनहीं पुराने खुशहाल दिनों को फिर से लाना चाहता हूं। अर्थशास्त्रियों का कहना है कि मैं असंभव कार्य करना चाहता हूं। कुछ लोग मजाक के रूप में टीका-टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि जब मेरा देहांत होगा तो मेरे मृत शरीर को जलाने के लिए लकड़ी की कोई कमी नहीं पड़ेगी, क्योंकि मैं चरखे बनवा रखे हैं; इस रूप में मानो मैंने लकड़ी की पर्याप्त व्यवस्था पहले से ही कर ली है। कुछ भी हो यह तथ्य है कि मिल-उद्योग में गरीब मजदूरों को एक रुपया उत्पादन मूल्य की वस्तु में कठिनाई से एक पैसा मिलता है। रुपये पर एक आना भी उन्हें कभी नहीं मिलता। (महात्माजी ने आगे बोलते हुए, कुछ आंकड़ों का हवाला देते हुए लोगों की आर्थिक स्थिति का विस्तार से विवरण दिया।) लोगों की आमदनी के संबंध में दादाभाई नौरोजी, लॉर्ड कर्जन और आर. सी. दत्त ने जो आंकड़े प्रस्तुत किए हैं, वे वास्तविकता बताते हैं।

भारत की प्रति-व्यक्ति आमदनी को बताने वाले छोटे-से निशान की तुलना यह लम्बी लाल पट्टी देखिए जो अमेरिका की प्रति व्यक्ति आमदनी को बता रही है। वहां एक व्यक्ति की, प्रतिदिन की आमदनी 14 रुपये से ऊपर है और यहां प्रतिदिनि डेढ़ आना है। अन्य देशों की आमदनी की तुलना कीजिए, क्रमशः इंग्लैंड, फ्रांस, जापान की प्रतिदिन की आमदनी 7, 6 और 5 रुपये है और यहां प्रतिदिन डेढ़ आना औसत आमदनी है। यदि आप वेतन पानेवाले मंत्रियों, कार्यकारी पार्षदों और कुछ एक वकीलों तथा उनसे कुछ कम लखपतियों की आमदनी को इस हिसाब से अलग कर दें तो हमारे बहुसंख्यक गरीब लोगों की आमदनी इससे भी कम होगी।

मैं आपसे बड़ी विनम्रता से पूछता हूं कि आप कोई उपाय बताएं, जिससे इस स्वल्प

आमदनी को बढ़ाया जा सके। मैं सभी से यह पूछता रहा हूं परंतु कोई लाभ नहीं हुआ। गहन चिन्तन एवं हाल के वर्षों के दौरान लाखों लोगों से सजीव सम्पर्क के परिणामस्वरूप, मैंने यह सुझाव दिया है कि इस आमदनी को बढ़ाने के लिए केवल चरखे को ही साधन के रूप में अपनाया जा सकता है।

इस उत्पादन का अर्थ है 30 हजार रुपयों का बिहार की 3 हजार गरीब महिलाओं में वितरण। मेरे साथ दरभंगा के खादी केन्द्रों में आइए और देखिए कि वहां की हिन्दू एवं मुसलमान महिलाओं को चरखे ने कितना उल्लास और कितनी प्रसन्नता दी है। यदि मैं इससे अधिक महिलाओं को काम नहीं दे सकता, तो यह मेरा नहीं, आपका दोष है। यदि आप उनके हाथों द्वारा बनायी गयी वस्तुएं खरीदने की चिन्ता नहीं करते, तो काम आगे नहीं बढ़ सकता। आपके द्वारा प्रत्येक गज खद्दर खरीदने का मतलब उन महिलाओं के हाथ में कुछ पैसे रखना होगा। वे कुछ-एक पैसे ही होंगे, अधिक नहीं। परंतु जहां पहले एक पैसे की भी कमाई नहीं थी, वहां कुछ पैसों का भी महत्त्व होगा।

मैंने राजमहेन्द्र और बारीसाल में पतित महिलाओं को देखा थां एक जवान लड़की ने मुझसे पूछा ''आपका चरखा हमें क्या दे सकता है?'' उसने कहा, ''जो आदमी हमारे पास आते हैं, उनसे हमें कुछ-एक मिनटों के या 5 या 10 रुपये मिल जाते हैं।'' मैंने उसे बताया कि चरखे से आपको उतना तो नहीं मिल सकता; परंतु यदि आप लज्जास्पद जीवन जीना छोड़ दें तो मैं आपको कातना और बुनना सिखाने का प्रबंध कर सकता हूं और इनसे आपको समुचित जीविका कमाने में सहायता मिल सकती है। उस लड़की की बात सुनकर, मेरा दिल अंदर ही अंदर बैठ गया और मैंने ईश्वर से पूछा कि मेरा भी जन्म स्त्री के रूप में क्यों नहीं हुआ। मेरा जन्म स्त्री के रूप में न होने पर भी, मैं स्त्री बन सकता हूं और भारत की उन स्त्रियों के लिए ही, जिनमें अधिकांश को प्रतिदिनि एक आना भी नहीं मिलता, मैं चरखा एवं अपना भिक्षापात्र लिए हुए देश भर में चक्कर काट रहा हूं।

मैं आपसे यह विनती, उन बहनों के लिए करता हूं। मैं सरकार से विनती करने में भी कोई शर्म नहीं मानता। मैं खादी और चरखे के कार्यक्रम के लिए वाइसराय और मंत्रियों का सहयोग चाहता हूं। आप, आपको जो विभाग सौंपे गए हैं उनसे, मुझे पैसा दीजिए। अपने कर्मचारियों को खादी पहनाइए। अपने स्कूलों में चरखे शुरू करवाइए। अपने आप खादी पहनिए।

देश का यह मेरा तीसरा दौरा है। मेरा यह विचार है कि शिक्षित बिहारियों में से कुछ ही लोग प्रांत के गांवों में रहने वाले गरीब लोगों के उतने निकट सम्पर्क में आये हैं, जितना मैं स्वयं आया हूं। उनकी दुर्दशा का व्यक्तिगत रूप से अध्ययन करने के बाद, मैं इस निर्णय पर पहुंचा हूं कि उनकी गरीबी को दूर करने का एकमात्र साधन चरखा है। कई लोगों का कहना है कि असहयोग आंदोलन के साथ खद्दर भी समाप्त हो गया है। परंतु ऐसी बात नहीं है। इसके विपरीत खादी ने बड़ी उन्नति की है। परंतु मुझे उसकी प्रगति से संतोष नहीं है। करोड़ों के लिए भोजन एवं काम की व्यवस्था करना मेरा उद्देश्य है। परंतु यह काम अभी लाखों की गिनती तक भी नहीं पहुंचा है।

मैंने खादी को सरकारी, गैर-सरकारी और हिन्दू तथा मुसलमान दोनों के लिए संयुक्त मंच के रूप में पेश किया है। यदि हिन्दू यह सोचे कि इससे अधिकतर मुसलमानों को लाभ होगा, क्योंकि बुनकर (ज्यादातर) मुसलमान ही हैं, या मुसलमान यह सोचें कि इसका लाभ हिन्दुओं को होगा, क्योंकि अधिकतर हिन्दू महिलाएं ही कताई करती हैं—तो इसमें मेरा कोई बस नहीं है। वास्तव में इससे दोनों जातियों को लाभ होगाा, क्योंकि बुनकर और कतैये हिन्दू और मुसलमान दोनों हैं। *लोगों की यह भी शिकायत है कि खादी खुरदरी और घटिया किस्म की होती है। परंतु मैं पूछता हूं कि क्या आप माता की बनायी हुई रोटी को इस कारण से अस्वीकार कर देंगे कि दिल्ली के बढ़िया बिस्कुटों के मुकाबले में वह घटिया है। मुझे ऐसी आशा नहीं है।*

प्रो. एस. बी. पुणताम्बेकर एवं श्रीयुत वरदाचारी द्वारा लिखित, पुरस्कृत ''हाथ कताई और हाथ बुनाई'' नामक निबन्ध आप लोगों को ध्यानपूर्वक पढ़ने की सलाह देता हूं। भाषण समाप्त करते हुए सभी लोगों से, विशेषकर शिक्षित और धनी लोगों से, हार्दिक अपील करता हूं कि वे चरखा और खादी को अपनाकर देश में उसके लिए वातावरण बनाएं। यदि एक बार ऐसा हो जाए तो उस प्रकार की प्रदर्शनी, जिसका मैं इस शाम को उद्घाटन करने जा रहा हूं, फिर कभी लगाने की कोई आवश्यकता नहीं होगी। आप गांवों में बसने वाले उन गरीब लोगों के लिए कुछ करें, जिनकी कीमत पर आप कस्बों और शहरों में चिरकाल से फल फूल रहे हैं? यह आपके योग्य काम है।

(30 जनवरी, 1927 को पटना में खादी प्रदर्शनी के उद्घाटन अवसर पर दिया गया भाषण, 2.2.1927)

संपादक के नाम पत्र

प्रिय अशोक मोती जी,

सादर प्रणाम।

31 दिसंबर, 2016 के सर्वोदय जगत में आपका लेख 'बेनीपुरी और जेपी : एक दूसरे के हृदय में बसते थे' रोचक और जानदार था। सर्वोदय जगत में ऐसे जानदार लेख कम आते हैं। इस लिए आप बधाई के पात्र हैं।

–कृष्ण कुमार खन्ना, मेरठ

28 फरवरी पुण्यतिथि : स्मरणांजलि

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद

❑ अभय प्रताप

वे गांधीजी के अनन्य भक्त थे, पर अपनी राय व्यक्त करने में स्वतंत्र थे। कभी मतभेद होते तो अपना पक्ष नम्रतापूर्वक बापू के समक्ष रख देते थे। गांधीजी का स्पष्टीकरण समझ में न आये तो भी श्रद्धावश शिरोधार्य कर लेते थे। क्योंकि अपने अनुभव से उन्होंनें यह धारणा बना ली थी कि भले समझ में न आये तब भी अन्ततोगत्वा बापू की ही बात सही निकलती थी। इसलिए कोई भी नयी योजना प्रारम्भ करते समय गांधीजी को राजेन्द्र बाबू की गहरी समझ का लाभ तो मिलता ही था, साथ ही उनके समर्थन का भी भरोसा रहता था।

भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद का जन्म 3 दिसंबर, 1884 को बिहार के जीरादेई नामक छोटे-से गांव में हुआ था। उनके पूर्वज गरीब थे, पर परिश्रमी और संयमी थे। राजेन्द्र बाबू के बड़े दादा हथुआ राज के दीवान थे। वे बड़े सेवाभावी होने के साथ ही बुद्धिमान भी थे। राजेन्द्र बाबू के पिताजी का नाम महादेव सहाय था। ये बड़े योग्य व्यक्ति थे, उन्हें बगीचे लगाने का शौक था, कसरत तथा घुड़सवारी भी करते थे, रोगियों की सेवा शौक से करते थे, इसलिए वे बहुत लोकप्रिय थे। ऐसा दीखता है कि राजेन्द्र बाबू ने बहुत-से गुण अपने पिताजी से पुत्राधिकार में पाये।

परिवार में राजेन्द्र बाबू सबसे छोटे थे, अतः माता-पिता, दादा-दादी सबके दुलारे थे। वे जल्दी सोते और जल्दी उठते थे। घर में खाना देर रात से बनता था, अक्सर इन्हें नींद से उठाकर खिलाना पड़ता था। नींद में खाकर सो जाते और सुबह उठकर कहते कि मैंने रात खाना नहीं खाया, भूख लगी है। सुबह उठकर वे माँ को जगा देते, वे उन्हें प्रभाती और भजन सुनाती, रामायण-महाभारत की कहानियां भी सुनातीं। ये सब राजेन्द्र बाबू को बड़ा अच्छा लगता था। वे रामायण-महाभारत के पात्रों से बहुत प्रभावित होते, उनके जैसा बनने की चाह मन में उठने लगी।

जीरादेई गांव बहुत सभ्य गांव था। गांव के लोग मिलजुलकर रहते थे। अमीर-गरीब, हिन्दू-मुसलमान सभी त्योहार साथ मनाते थे। राजेन्द्र बाबू मजे से इन सबमें शरीक होते थे।

विद्यार्थी जीवन में ही राजेन्द्र बाबू ने अपना जीवन नियमित कर लिया था। वे प्रातः चरखा चलाते, स्नान आदि करके गीता पाठ करते, प्रार्थना व आसन आदि करते थे। धार्मिक ग्रंथ पढ़ना उन्हें पसंद था।

प्रारम्भिक शिक्षा मौलवी साहब से फारसी पढ़ने से शुरू हुई। बाद में अंग्रेजी पढ़ने वे छपरा हाईस्कूल में गये। पहले वर्ष की परीक्षा में ही वे प्रथम स्थान पर आये। उनकी प्रगति से सभी खुश थे। उन्हें छात्रवृत्ति मिली। बाद में तो मैट्रिक, एफ. ए. बी. ए., एम.एल. सभी में सर्वप्रथम आये।

इनकी इच्छा विदेश जाकर पढ़ने की थी। पर पिताजी ने इजाजत नहीं दी। बाद में पिताजी गुजर गये, तो भी वे मां को छोड़कर विदेश न जा सके। पढ़ाई में ही नहीं, जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी वे सबसे आगे दीखने लगे। वे साथियों को भी आगे लाने का प्रयास करते थे, इसलिए वे बहुत लोकप्रिय थे।

बारह वर्ष की उम्र में विवाह हो गया। पर विवाह में तिलक-दहेज को वे पसंद नहीं करते थे। छोटी उम्र का विवाह भी वे नापसंद करते थे। राजेन्द्र बाबू समाज सुधार के काम में बड़ा रस लेते थे। 1905 में बंगाल में स्वदेशी आंदोलन प्रारम्भ हुआ, तो वे भी उससे आकर्षित हुए। उन्होंने बिहार में विद्यार्थियों के माध्यम से स्वदेशी का आंदोलन प्रारम्भ किया।

1910 में गोपालकृष्ण गोखले बिहार आये। उनकी प्रेरणा से राजेन्द्र बाबू देशसेवा की बात सोचने लगे और तदनुसार अपने जीवन में सादगी लाने लगे। कुछ समय मुजफ्फरपुर एल. एस. कॉलेज में प्रोफेसर रहे तथा बाद में कलकत्ता में सफल वकील बने। बाद में बिहार के अलग प्रांत बनने पर वे पटना में वकालत करने लगे और साथ ही विद्यार्थियों की सेवा के काम प्रारम्भ किये। लड़कियों को अधिक सुविधाएं मिले, गरीब विद्यार्थियों को मदद मिले, ऐसे प्रयास किये।

चम्पारण के दुख सुनकर जब गांधीजी बिहार आये, तो राजेन्द्र बाबू उनसे मिले। मिलकर बहुत प्रभावित हुए। वे उनके साथ सत्याग्रह में शामिल हो गये। चम्पारण के सत्याग्रह ने राजेन्द्र बाबू को गांधीजी और ग्रामीणों के निकट ला दिया और सच्चे कार्यक्षेत्र में खड़ा कर दिया। उन्होंने अनुभव किया कि सच्चा भारत गांव में रहता है और उनकी सेवा ही सच्ची देशसेवा है। ग्रामीणों की सेवा के लिए ग्रामीण बनना चाहिए, सादगी लानी चाहिए आदि।

धीरे-धीरे राजेन्द्र बाबू गांधीजी के कार्यक्रमों में खींचते गये। गुजरात के खेड़ा सत्याग्रह में उन्होंने भाग लिया। कांग्रेस अधिवेशनों में भी वे जाने लगे। और असहयोग आंदोलन प्रारम्भ हुआ तो अपनी वकालत छोड़कर उसमें कूद पड़े। वे कांग्रेस महासमिति के सदस्य बन गये।

गांधीजी के साथ बिहार का दौरा किया और स्वदेशी का प्रचार किया। चरखा और

शराबबंदी का प्रचार किया। अनेक स्कूल खोले। गांधीजी ने कांग्रेस में तय किया कि एक करोड़ का तिलक स्वराज फण्ड एकत्रित किया जाय तथा कांग्रेस के एक करोड़ सदस्य बनाये जायं, बीस लाख चरखे चलाये जायं। राजेन्द्र बाबू ने जी-जान से कोशिश की और एक करोड़ से ज्यादा का फण्ड एकत्र हो गया।

असहयोग के दिनों में चौरीचौरा में कुछ ग्रामीणों ने पुलिस चौकी जला दी और पुलिस वालों को भी जला दिया। इससे गांधीजी दुखी हुए और असहयोग आंदोलन स्थगित कर दिया। देश के अनेक नेता गांधीजी पर नाराज हुए, पर राजेन्द्र बाबू को गांधीजी की अहिंसा की बात समझ में आयी। उन्होंने गांधीजी का समर्थन किया और वे गांधीजी के विश्वासपात्र बन गये।

राष्ट्रीय आंदोलन में अनेक बार वे जेल गये। मार भी खायी। अन्तिम जेल यात्रा में उनका स्वास्थ्य बिगड़ा फिर भी बाहर आते ही वे सत्याग्रह के काम में लग गये। राजेन्द्र बाबू की शिक्षा आदि कामों की गांधीजी ने बहुत प्रशंसा की। वे अकेले नेता थे, जिनका कांग्रेस के दोनों दल वाले विश्वास करते थे।

नमक आंदोलन का संयोजन बिहार में राजेन्द्र बाबू ने किया और जेल गये। छूटते ही विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार में लग गये और फिर जेल गये। गांधीजी के हरिजन प्रश्न पर आमरण उपवास के समय पूना जाकर समझौता कराने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। बाद में मद्रास प्रांत का दौरा करके हरिजन सेवा की बात समझायी। अपने प्रांत में इस काम को बढ़ावा दिया।

एक केस के सिलसिले में वे लंदन गये। जाते-आते समय यूरोप के अनेक देशों में भी वे गये। वहां गांधीजी का संदेश सुनाया, अहिंसा की बात समझायी।

स्वतंत्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति बनने का सौभाग्य उनको बना। उन्होंने सरकारी ठाटबाट से अलिप्त रहकर अपना सादगीपूर्ण तथा नियमित जीवन बिताया। भारतीय संस्कृति की गरिमा के अनुरूप उनकी सलाह से देश हमेशा लाभान्वित होता रहा। इस तरह राजेन्द्र बाबू ने अपने जीवन में यह सिद्ध कर दिया कि वे एक कुशल राजनेता, सच्चे समाज सुधारक, कुशल शासक, योग्य सेनापति तथा जनता के सेवक हैं।

अपने प्रांत में बाढ़ या भूकम्प आये, वे जी-जान से दुखी एवं लाचार लोगों की सेवा में लग जाते थे। इससे वे बिहार के जनप्रिय नेता बन गये थे।

अपनी बनायी हुई शिक्षण संस्थाओं के माध्यम से उन्होंने राजनीति और रचनात्मक दोनों तरह के काम करवाये।

राजेन्द्र बाबू को हिन्दी से प्रेम था। उन्होंने हिन्दी सीखकर उसमें अनेक पुस्तकें लिखीं। एक समाचार पत्र भी हिन्दी में निकाला।

जब भारत आजाद हुआ तो प्रथम मंत्रिमंडल में वे खाद्य मंत्री बने। भारत की नयी संविधान सभा के कुशल सभापति बने तथा गणतंत्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति बने।

इतना सम्मान पाकर भी राजेन्द्र बाबू के जीवनशैली में कोई बदलाव नहीं आया। उनका सादा, नियमित रचनात्मक जीवन सभी के लिए प्रेरणादायी रहा। राष्ट्रपति पद पर दस वर्ष रहने के बाद वृद्धावस्था में पटना जाकर रहे और उनका 28 फरवरी, 1963 को स्वर्गवास हुआ।

राजेन्द्र बाबू का आंदोलनात्मक काम के साथ रचनात्मक कामों के प्रति आकर्षण था। 1923 में जमनालालजी ने जब कार्यकर्ताओं के मदद के लिए गांधी सेवा संघ का गठन किया तो राजेन्द्र बाबू उसके संस्थापक ट्रस्टी बने थे। बिहार प्रांत का काम अपने जिम्मे लिया। वे अपना व्यक्तिगत खर्च नाममात्र का गांधी सेवा संघ से लेते थे और पूरा समय सेवाकार्य में लगाते थे। उन्हीं की प्रेरणा और परिश्रम से नयी शिक्षा तथा खादी, गांधीजी के दोनों प्रिय कार्य बिहार में बहुत फले-फूले।

लंदन में शिक्षक ने उनकी उत्तर पुस्तिका पर लिखा—''विद्यार्थी परीक्षक से ज्यादा जानता है (Examinee is better than examiner)''। इस तरह राजेन्द्र बाबू की तीव्र बुद्धि की चर्चा सर्वत्र रही।

वे गांधीजी के अनन्य भक्त थे, पर अपनी राय व्यक्त करने में स्वतंत्र थे। कभी मतभेद होते तो अपना पक्ष नम्रतापूर्वक बापू के समक्ष रख देते थे। गांधीजी का स्पष्टीकरण समझ में न आये तो भी श्रद्धावश शिरोधार्य कर लेते थे। क्योंकि अपने अनुभव से उन्होंनें यह धारणा बना ली थी कि भले समझ में न आये तब भी अन्ततोगत्वा बापू की ही बात सही निकलती थी। इसलिए कोई भी नयी योजना प्रारम्भ करते समय गांधीजी को राजेन्द्र बाबू की गहरी समझ का लाभ तो मिलता ही था, साथ ही उनके समर्थन का भी भरोसा रहता था। *(गांधी सेवा संघ का इतिहास)*

'सर्वोदय जगत'

के सभी सुहृद पाठकों, शुभचिन्तकों, लेखकों को सूचित करते हुए हर्ष हो रहा है कि मार्च, 2017 के दोनों अंक 'चम्पारण सत्याग्रह शताब्दी वर्ष' पर केन्द्रित विशेषांक एवं संयुक्तांक होगा। आप सभी से निवेदन है कि अपने महत्त्वपूर्ण आलेख, कविता पत्रिका के इस विशेषांक हेतु हमें 5 मार्च, 2017 तक भेजने की कृपा करें। –सं.

स्मरणांजलि

एक विद्रोही अर्थशास्त्री कुमारप्पा

❑ न्यायमूर्ति चन्द्रशेखर धर्माधिकारी

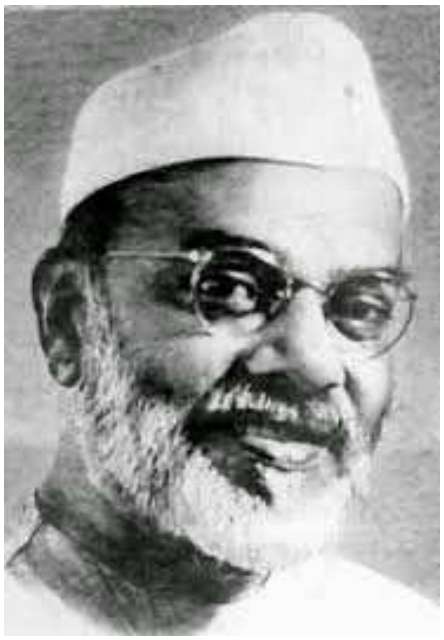

गांधी विचारक कुमारप्पा की 125वीं जयंती पर उन्हें एक बार पुनः समझने की आवश्यकता है। भूमंडलीकरण की असफलता और जलवायु संकट के चलते संपूर्ण गांधीवाद एक बार पुनः पूर्णतया प्रासंगिक हो गया है अतएव कुमारप्पा भी उतने ही महत्त्वपूर्ण बन गये हैं। **–सं.**

डॉ. जे. सी. कुमारप्पा का नाम गांधी अर्थशास्त्र के जानकार अध्येता और ग्राम-उद्योग के प्रणेता के नाते लिया जाता है। जोसेफ कारनेलियस कुमारप्पा का जन्म तंजावुर में 4 जनवरी 1892 को हुआ। सन् 1913 में वे विलायत गये और वहां से स्नातक होकर सन् 1919 में भारत लौटे। चार्टर्ड एकाउंटेंट के नाते उन्होंने 'कारनोलियस एंड डावर' नामक एक फर्म स्थापित की। सन् 1926 में वे अमेरिका गये और सन् 1927 में 'सार्वजनिक वित्त व्यवस्था और हमारी दरिद्रता' विषय पर प्रसिद्ध निबंध लिखा। इससे अंग्रेजों के आर्थिक अन्याय और शोषण की जानकारी विश्व को हुई। उन्होंने 'पब्लिक फाइनेंस एंड इंडियन प्रॉपर्टी' नामक पुस्तक लिखी। अंततः सी. ए. का कार्य छोड़कर वे गुजरात विद्यापीठ में प्राध्यापक बन गये। उन्होंने न विवाह किया और न गृहस्थी बसायी। जब भी कोई इस संदर्भ में उनसे पूछता, वे जवाब देते, 'पहले यह सोचा था कि जब चार अंकों वाली तनख्वाह मिलेगी तब शादी करेंगे। फिर जब उतनी मिलने लगी तो गांधीजी के जाल में फंस गया। उस जाल में इतना उलझता गया कि शादी की बात याद ही नहीं रहीं!' वे एक ऐसे अर्थशास्त्री थे, जिनके पास एक पाई की भी सम्पत्ति नहीं थी।

गांधीजी के सान्निध्य में आने पर कुमारप्पा की पोशाक, रहन-सहन सब कुछ बदल गया। उन्होंने महादेव भाई देसाई की अनुपस्थिति में 'यंग इंडिया' में लेख लिखे। आजादी के आंदोलन में जेल भी गये। कारागृह से बाहर आने पर वे बिहार के भूकंपग्रस्त इलाकों में मदद करने पहुंचे। उन्होंने वहां के सारे हिसाब-किताब इतने करीने से रखे कि बिहार की गर्दन ऊंची हो गयी। वर्धा लौटकर मगनवाड़ी में रहने लगे। भारतीय अर्थशास्त्र में खादी और ग्रामोद्योग को प्रतिष्ठा दिलाने में उनका बहुत बड़ा हाथ था। उन्होंने ग्रामसेवक विद्यालय, ग्रामोद्योग प्रयोगशाला आदि संस्थाओं की स्थापना की। 'ग्राम आंदोलन क्यों?' और 'स्थाई अर्थव्यवस्था' नामक दो मौलिक ग्रंथ भी लिखे। इन ग्रंथों की भूमिका में गांधीजी ने उनकी काफी प्रशंसा की है। 'रोटी के बदले पत्थर' नामक किताब के लिए उन्हें जेल भी जाना पड़ा। पहली दोनों किताबों के लिए गांधीजी ने उन्हें 'डॉक्टर ऑफ डिविहनिटी' और 'डॉक्टर ऑफ विलेज इंडस्ट्रीज' उपाधियां प्रदान की थीं! वे सही माने में ईसाई थे। धर्म के मूल तत्त्वों पर उनकी अटल निष्ठा थी।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद जब योजना-आयोग की स्थापना हुई तब कुमारप्पा को सलाहकार के नाते निमंत्रित किया गया। लेकिन उनकी 'कृषि ग्रामोद्योग समन्वित अर्थव्यवस्था योजना आयोग और सरकार के गले उतरने वाली नहीं थी। वे मानते थे कि कर्जदार बनकर बड़े बांध बनाने के बजाए हर दस एकड़ में एक कुआं खोदा जाय। इससे गरीब काश्तकारों को राहत मिल सकेगी। अन्य कई अर्थशास्त्रियों को लगता था कि 'कुमारप्पा हमें वापस बैलगाड़ी के युग में ले जाना चाहते हैं।' उनके मतभेद बढ़ते गये और आज हम उसके परिणाम भुगत रहे हैं। अंत में उन्होंने 1951 में वर्धा जिले के सेलडोह गांव में 'पन्नै आश्रम' स्थापित कर 'कृषि ग्रामोद्योग केन्द्र' की स्थापना की। तमिल में खेती को 'पन्ने' कहते हैं। अहिंसक जनतंत्र के लिए एकात्मक योजना उस प्रयोग का आधार था। लेकिन दुर्भाग्य से कुछ गांधीवादियों को भी उनके विचार ठीक नहीं लगे। उनमें से कुछ तो कुमारप्पा को 'गांधीवादी कम्युनिस्ट' तक कहते थे। वे स्वभाव से भावना प्रधान थे। अपने विचारों को प्रत्यक्षतः साकार करने की उन्हें जल्दी भी थी। परिणामतः उन पर काफी मानसिक और शारीरिक तनाव रहता था। अंततः 30

जनवरी 1960 को उनकी मृत्यु हो गयी। वह गांधीजी की स्मृति यानी शहीद दिन भी था! आर्थिक क्षेत्र के विद्रोही और विप्लवी के रूप में वे जीते रहे और उसी रूप में पहचाने जाते रहे।

अहिंसा, स्वदेशी, युद्ध का आर्थिक आधार, केन्द्रीभूत उत्पादन होने के कारण होने वाला शोषण, धन की माया, बढ़ती हुई अनावश्यक जरूरतें, समतामूलक उत्पादन और विकेन्द्रीकरण तथा ग्रामीण समाज अर्थव्यवस्था के बारे में उनके विचार प्रसिद्ध हैं। लेकिन हम इस आदमी को समझ ही नहीं सके। कुमारप्पा की तृष्णा की तीव्रता हम लोग कभी समझ नहीं पाये। इसलिए कुछ लोगों को लगता था कि उन्हें बहुत जल्दी हो रही है। अपने जीवन-व्यवहार में वे ईसा के सच्चे अनुयायी थे। एक बार सरदार पटेल के साथ वे राष्ट्रपति भवन देखने गये। सरदार ने पूछा उनकी वर्धा की झोपड़ी और इस आलीशान महल में क्या फर्क है? कुमारप्पा का जवाब था, ''दोनों में जमीन-आसमान का अंतर है। हमारी झोपड़ी में हम सारी चीजें प्राकृतिक प्रकाश में स्पष्ट देख सकते हैं लेकिन यहां तो सारी चीजें कृत्रिम प्रकाश में देखनी पड़ रही हैं।'' हजारों वोल्टेज बल्बों का प्रयोग करना और फिर कन्सील्ड लायटिंग के द्वारा कम या इतना मंद प्रकाश रखें कि अनाज के कीड़े तक दिखायी न दें। इसे वे *'अनर्थशास्त्र', व्यर्थशास्त्र'* या *'स्वार्थशास्त्र'* कहते थे। यह शोषण पर आधारित है। अतएव इस देश के लिए उपयोगी नहीं है। इस देश के बजट के बारे में और खासकर सुरक्षा विषयक अर्थ-योजना के बारे में उनका मत था—''हमारी अवस्था उस गरीब आदमी जैसी है जो अपनी मिल्कियत का आधा हिस्सा अपने खाली मकान की रक्षा के लिए चौकीदार पर खर्च करता है।'' उनके मन में 'मातृत्व' (मां बच्चों के लिए जो कुछ करती है वह) अर्थव्यवस्था का भाव था, जो उपयोग के लिए उत्पादन करती है वित्त, बिक्री या निर्यात के लिए या फायदा कमाने के लिए नहीं। इसे गांधीजी ने 'उत्पादन मकान के लिए दुकान के लिए नहीं कहा था। वह अहिंसक आयोजन और योजना तथा अहिंसक स्वदेशी अर्थात सत्य, अहिंसा पर आधारित समाज और जीवन व्यवस्था चाहते थे। उनके लिए ग्राम-संगठन और ग्रामीण, सामाजिक, आर्थिक, विकेन्द्रित समाज-व्यवस्था अभिप्रेत थी।

सामुदायिक विकास विभाग के मंत्री एक बार कुमारप्पा से मिलने के लिए आये। अपने विकास कार्यक्रमों की बेहद सफलता की बात भी कही। कुमारप्पा ने पूछा, 'सफलता की आपकी व्याख्या क्या है?' मंत्री महोदय ने सांख्यिकीय लेखा-जोखा बताना शुरू किया। कुमारप्पा शांति से सुन कर बोले, 'इन सबके कारण कार्यक्रम सफल हुआ, क्या ऐसा कहा जा सकेगा?' मंत्री ने सवाल दागा, 'तो फिर यश कैसे गिना जाता है?' *कुमारप्पा का जवाब था 'सामुदायिक विकास कार्यक्रम किसी क्षेत्र में शुरू करने के पहले मैं उस क्षेत्र के कुछ लोगों के शरीर की पसलियां गिनूंगा और तीन साल के बाद अगर उन पर थोड़ा भी मांस चढ़ा होगा तो मानूंगा कि कार्यक्रम सफल रहा। मंत्री महोदय, आप भूखे आदमी के शरीर पर रेशमी शर्ट चढ़ाना चाहते हैं। इसमें शायद ही कभी सलता मिले।'*

कुमारप्पा जी सही अर्थों में ग्रामीणजनों के उद्धारक या ऋषि थे। उन्होंने ग्रामीणजनों के उपयोग के लिए गांव की मिट्टी-पानी से कुछ चीजें भी बनायीं। उन्होंने गरमी में साग-सब्जियां रखने के लिए मटके जैसा रेफ्रिजरेटर बनाया था। उसका मूल्य कुछ छह रुपये था। न बिजली का खर्च और न कोई झमेला।

मेरे जीवन में कुमारप्पा का प्रवेश कब और कैसे हुआ, मुझे ज्ञात नहीं। मैंने नागपुर विद्यापीठ में एम.ए. की परीक्षा के लिए 'अर्थशास्त्र' विषय लिया था। मौखिक परीक्षा लेने के लिए मुम्बई से अर्थशास्त्र के एक प्रसिद्ध प्राध्यापक आये थे। नागपुर से सेवाग्राम पास में है इसलिए या फिर मेरे नाम के कारण उन्होंने मुझे पहला ही सवाल पूछा, 'गांधीजी के अर्थशास्त्र का मूल तत्त्व क्या है?' 'गांधीजी के अर्थशास्त्र का मूल तत्त्व क्या है?' मैंने कहा, 'अहिंसा। वे गुस्सा हुए और कहा कि वह राजनीतिक सिद्धांत है, आर्थिक नहीं, मैंने उन्हें कुमारप्पा के विचारानुसार सिर्फ हिंसा न होना यानी अहिंसा नहीं, तो राजनीतिक, आर्थिक या सामाजिक शोषण यानी हिंसा ही है, समझाने की कोशिश की। उनका मत बना कि मुझे गांधीजी के अर्थशास्त्र का ककहरा तक ज्ञात नहीं। उन्होंने मुझे इतने कम अंक दिये कि मैं सौभाग्य से तृतीय श्रेणी में ही सही, पास हुआ, इसलिए बच गया। अन्यथा जिन्दगी कौन-सा मोड़ लेती, पता नहीं। इसे मैं कुमारप्पा की कृपा ही मानता हूं। ❑

कताई

''मै इससे ज्यादा उदात्त और ज्यादा राष्ट्रीय किसी दूसरी चीज की कल्पना नहीं कर सकता कि प्रतिदिन एक घण्टा हम सब कोई ऐसा परिश्रम करें जो गरीबों को करना ही पड़ता है और इस तरह उनके साथ और उनके द्वारा सारी मानव-जाति के साथ अपनी एकता साधे। मैं भगवान् की इससे अच्छी पूजा की कल्पना नहीं कर सकता कि उसके नाम पर मैं गरीबों के लिए गरीबों की ही तरह परिश्रम करूं।...जब मैं सोचता हूं कि यज्ञार्थ किये जाने वाले (इस) शरीर-श्रम का सबसे अच्छा और सबको स्वीकार्य रूप क्या होगा, तो मुझे कताई के सिवा और कुछ नहीं सूझता।''

–गांधी

अमीरी एक है बीमारी

❑ सुधांशु भूषण मिश्र

दुनिया भर में पांव पसार चुकी अमेरिकी निवेश कंपनी 'मेरिल-लिंच' ने सन् 2010 में एक सर्वेक्षण किया था। इसमें उसने सलाह दी थी कि ग्राहकों, यानी कम से कम तीस अरब रुपये वाले ग्राहकों का यह वर्ग न केवल चिन्ता, फिक्र से परेशान है वरन उन्मादग्रस्त भी है। उन्हें नींद नहीं आती, स्मृतिदोष की शिकायत रहती है, वे अवसाद से घिरे रहते हैं, उनके सामने अपनी पहचान का संकट है। वे अपने धन का आनंद नहीं उठा पा रहे हैं। वे आत्मघात कर रहे हैं। उनकी मनोदशा चिन्तित करने वाली है।

यहां हम जिस व्यवसाय में लगे हैं, उसकी नई-पुरानी पत्रिकाएं उलटते-पलटते नजर एक छोटे-से विज्ञापन पर बरबस आ अटकी। वह एक बैंक का विज्ञापन था। बैंक अपने ग्राहकों यानी खाताधारियों के लिए कुछ मनोवैज्ञानिकों की भर्ती करने जा रहा था। बैंक और मनोवैज्ञानिक? चौंकना स्वाभाविक था। खोजबीन की तो पता चला कि अमेरिका के प्रायः सभी बैंक अपने कुछ खास असामियों को मनोचिकित्सकों की सेवाएं भी प्रदान करने लगे हैं। कौतूहल अब और बढ़ा। पूछताछ की तो जो बातें सामने आयीं उन पर हंसें या रोएं, तय करना कठिन हो गया। कुल मिलाकर बात यह निकली कि बैंकों के मोटे असामी अपनी जमा दौलत देखकर फूल के ऐसे कुप्पा हो जाते हैं कि अक्सर उनके दिलो-दिमाग बिगड़ जाते हैं! पत्रिका में छपा विज्ञापन ऐसे ही ग्राहकों की सेवा के लिए था। बैंकों के कुछ चुनिंदा असामियों को सताने वाले इस मनोविकार को अब यहां 'सडन-वेल्थ-सिंड्रोम' कहते हैं। हिन्दी में चलिए इसे 'अमीरी की बीमारी' कह के काम चला लेते हैं।

क्या है अमीरी की बीमारी? यह एक प्रकार का मनोविकार है, जिसे ठीक से समझने के लिए हमें अपने मन की कुछ परतें उधेड़नी पड़ेंगी और उसकी क्रियाविधि की आधारभूत पद्धति समझनी होगी। मान लें, हम किसी के दरवाजे पर दस्तक दें और भीतर से कोई कहे कि घर पर कोई नहीं है। इसका क्या अर्थ हुआ? भीतर से किसी का यह कहना कि कोई घर पर नहीं है, घर में किसी के होने का सबूत होगा। भीतर से कोई यह तो कह सकता है कि पत्नी या बच्चे घर पर नहीं हैं, पर वह व्यक्ति खुद अपने होने से इनकार नहीं कर सकता। वास्तव में हममें से कोई भी अपनी असली मनःस्थिति से इनकार नहीं कर सकता। अगर कोई इसका आभास देता है और असलियत छिपाने की कोशिश करता है तो वह अपने साथ छलावा ही होगा, जिसका मानसिक दंश उसे देर-सबेर झेलना ही पड़ेगा।

अमीरी की बीमारी में ठीक यही होता है—आदमी दौलत पाकर फूला जरूर नहीं समाता, परंतु उसका भीतरी मन, उसका अचेतन उसे धिक्कारने भी लगता है। मनोविज्ञानी इसे *अपराध-भाव* कहते हैं। इससे मन में विरोधाभास और तनाव पैदा होता है, जिसे नहीं समझ पाने के कारण आदमी बेचैनी महसूस करता है। लॉटरी जीतने वाले, सट्टे में अकूत पैसा कमाने वाले, मां-बाप से विरासत में करोड़ों रुपये पाने वाले या तलाक में ढेर सारा मुआवजा पाने वाले यानी वैसे सभी लोग जिन्होंने पैसा अपनी मेहनत से नहीं कमाया है, अमीरी की इस बीमारी के शिकार होते देखे गये हैं।

यह जान लेना उपयोगी रहेगा कि 'सडन-वेल्थ-सिंड्रोम' अभी हाल में ही पहचानी गयी एकदम नयी बीमारी है। यों सन् 1985 में जब इसका पहले-पहल जिक्र हुआ था, तब किसी ने इस पर ध्यान नहीं दिया था। लेकिन मर्ज तब से लगातार फैलता गया और 2009 आते-आते इतना विकराल हो उठा कि बैंकों के अधिकारी अपने कुछ असामियों के मानसिक स्वास्थ्य को लेकर चिन्तित हो उठे और तब वेल्स-फार्गो नामक बड़े अमेरिकी बैंक ने इसे ठीक करने के लिए ऐसे पहले मनोवैज्ञानिक की अपने यहां नियुक्ति की। तब से बैंकों में मानो होड़ लगी है। आज करीब-करीब सभी बैंकों में यह सुविधा उपलब्ध है बशर्ते आपके खाते में कम-से-कम पांच करोड़ डॉलर यानी करीब तीस अरब रुपये जमा हों। यह तो हुई इच्छुक खातेदारों की पात्रता की बात।

आइए अब 'सडन-वेल्थ-सिंड्रोम' के लक्षणों पर नजर डालें। 'सडन-वेल्थ-सिंड्रोम' के चार चरण बताये हैं। पहले चरण को *हनीमून पीरियड* कह सकते हैं। इस दौर में पैसा पाकर आदमी दीवानगी की हद तक नाच उठता है। हमारे पास पैसा है, अब दुनिया ठेंगे पर। अब हमारा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा। शानो-शौकत, आमोद-प्रमोद या जुए-सट्टे में पैसा उड़ाना इसी दौर में होता है। कुछ सप्ताह या महीने बाद दूसरा चरण आरम्भ होता है, जब उन्माद थोड़ा ठंडा पड़ता है और आदमी को संदेह होने लगता है कि सभी लोगों की निगाह बस उसके पैसे और वैभव पर है। इस चरण में वह लोगों से, अपने संसार से थोड़ी दूरी बनाने लगता

है। तीसरे चरण में आदमी के मन में यह बात आने लगती है कि मेरे पास पैसा तो है, पर इसी कारण मैं मानो अपने-आपसे दूर हो चला हूं। इसी चरण में मन में अपराध-भाव पैदा होने लगता है कि यह पैसा मेरी कोई अपनी कमाई थोड़े ही है। यह विचार मन में आने का अर्थ होता है कि आदमी अवसाद में घिर गया।

अब देखें कि बैंकों द्वारा उपलब्ध कराए गए मनोवैज्ञानिक क्या विधि अपनाते हैं और किन विधियों से अपने मरीज का *'इलाज'* करते हैं? अपार दौलत के मारों को अपनी दौलत की फिक्र सताती रहे तो क्या आश्चर्य? आपने ठीक समझा, बीमारी का पहला लक्षण ही अकारण संदेह करना है। वह भी हर किसी पर। अपने पर भी, पति, पत्नी और बच्चों पर भी। हर कोई बस दौलत के लालच में मेरा साथ दे रहा है और मौका पाते ही कुछ झटक लेगा, हड़प लेगा। इस तरह शुरू होती है बीमार के एकाकीपन की प्रक्रिया। वह अपने संगी-साथियों से कटता जाता है, रात-दिन उन्माद में रहता है, खुद को अपने ही घर में कैद कर लेता है, और बीमारी बढ़ जाए तो आत्मघात भी कर डालता है। अमेरिका, ब्रिटेन और कनाडा में हाल के वर्षों में ऐसे सैकड़ों मामले सामने आए भी हैं। इस प्रक्रिया में मुकदमेबाजी, तलाक, घात-प्रतिघात, सभी खतरों की गुंजाइश रहती है।

जिस समाज में घोर असमानता हो और पिछले तीस सालों के दौरान गरीब-अमीर की खाई सुरसा के मुंह की तरह बढ़ती रही हो, उस समाज में अमीरी और खासकर अमीरों के प्रति सामान्य, मेहनतकश लोगों का रोष कोई अनहोनी बात नहीं माननी चाहिए। ऐसे में लूटमार, चोरी, नकबजनी, छिनैती, यानी अपराधों का बाजार तो गर्म रहेगा ही, अमीरी और बेशर्म व बेलगाम अमीरी के प्रति घृणा भी फैलती जाएगी। अपने अमीर ग्राहकों को बदनामी से बचाया जाए, इसी ख्याल से बैंकों में लगे मनोवैज्ञानिकों ने इस 'सेवा' का नाम ही बदल डाला है। तीस अरब रुपये वाले मोटे असामियों को 'लीगेसी-फेमिली-सर्विस' कोटि में रखा गया है। 'लीगेसी-फेमिली' अर्थात ऐसे लोग जिन्हें सम्पत्ति विरासत में मिली है! ध्यान दें, सेवा का नाम बदलकर असामी के मन की यह फांस निकालने की कोशिश की गयी कि इतना पैसा कहीं से बिना प्रयास मिल जाए तो इसमें हमारा क्या दोष? और, इस तरह यह प्रश्न चतुराई से छिपा दिया गया कि अमुक के पास इतनी दौलत कहां से और किस विधि से आयी? दूसरे शब्दों में, 'सेवा' का नाम बदल कर खातेदार के मन की चुभन भर कम करने की काशिश की गयी और उनकी अपार दौलत वास्तव में उनकी मेहनत का फल नहीं है, यह बात गौण कर दी गयी है।

अपने को धोखा देने की यह कुशलता भी बड़ी अद्‌भुत है! फांस को हटा दो ताकि खातेदार को कोई बुरा-भला न कह सके। अच्छा तो यह होता कि खातेदार को यह आभास कराया जाता कि अब उसके पास मौका है, वह अपनी छाप छोड़ सकता है और यह बात अगर ठीक तरह से बतायी जाती तो खातेदार को समाधान, आराम मिल सकता था। परंतु इसकी बजाय खातेदार को एक तरह से भुलावा दिया गया है। इन मनोवैज्ञानिकों की कोशिश ग्राहक को बस प्रचलित व्यवस्था, प्रचलित सोच और प्रचलित मूल्यों में पुनर्स्थापित करने भर की है। खातेदार के मन की फांस मिटे, यह उनका अभीष्ट है ही नहीं। परिभाषा भर बदल देना एक प्रकार की आत्म-वंचना ही हुई! परंतु इससे कहीं तथ्य भी बदल सकते हैं? फिर जैसी कि उम्मीद की जा सकती है, अधिकांश खातेदारों का मन कोरा का कोरा रह जाता है, और आगे हम इसके कई उदाहरण देखेंगे भी।

साफ है कि भोथरे सिद्धांतों से ज्ञान भले न बढ़े, अज्ञान बड़ी आसानी से ढंक जाता है। बहरहाल, अमीरी की बीमारी से ग्रस्त मरीज का व्यक्तिगत और सामाजिक फैलाव रुकता जाता है। लेकिन हम चाहें जितनी चतुराई दिखा लें, हमारा अचेतन इस छद्म को भांप लेने से नहीं चूकता। हम सभी यदा-कदा अनुभव करते हैं कि कामयाब हो गये, पर तभी पता चलता है कि रहे तो असफल ही!

'सडन-वेल्थ-सिंड्रोम' का मरीज उन्माद में क्यों रहता है, एकाकी क्यों पड़ता जाता है इसकी बुनियादी वजह यही हो सकती है कि उसके मन की परतों से यह पुकार सतत उठती है कि वह खोज कुछ और रहा था, पर उसे जो मिला वह वही नहीं है जिसकी उसे आकांक्षा थी! वह इस भीतरी आवाज को सुन नहीं पाता, और अगर सुन पाता है तो पहचान नहीं पाता। क्यों नहीं पहचान पाता? आधुनिक रहन-सहन ने आदमी को ऐसा उलझा दिया है कि उसे अपने मन के भीतर जाने की फुरसत ही नहीं। मन में आते-जाते इन विपरीत विचारों के कारण आदमी खंड-खंड हो रहा है, जिससे मन में कंपन रहता है और अशांति पैदा होती है। यह मन की दृढ़ता से ठीक उलटी स्थिति है।

मर्ज का दूसरा प्रमुख लक्षण है इन्कार, अस्वीकार। मरीज को विश्वास ही नहीं हो पाता कि उसके पास अचानक इतना पैसा आ गया है, वह अब क्या करे? अनेक मरीज इस ऊहापोह में दौलत उड़ाने लग जाते हैं और देखते-देखते कंगाल हो जाते हैं। वे ऐसा न करें, इसके लिए बैंक उन्हें 'सस्ती दर' पर अतिरिक्त सेवा प्रदान करते हैं। बैंक समय-समय पर अपने इन खाताधारियों के लिए ऐसी गोष्ठियां भी आयोजित करते हैं, जिन्हें *'रिच लाइफ पोर्टफोलियो'* कहा जाता है। इनमें मनोवैज्ञानिक उन्हें अपने पैसे को बचाकर रखने के गुर सिखाने का दावा करते

हैं। पैसे को बचा कर रखने के लिए ग्राहकों को पैसा उसी बैंक के 'इन्वेस्टमेंट पोर्टफोलियो' में निवेश करने की सलाह दी जाती है।

दुनिया भर में पांव पसार चुकी अमेरिकी निवेश कंपनी 'मेरिल-लिंच' ने सन् 2010 में एक सर्वेक्षण किया था। इसमें उसने सलाह दी थी कि ग्राहकों, यानी कम से कम तीस अरब रुपये वाले ग्राहकों का यह वर्ग न केवल चिन्ता, फिक्र से परेशान है वरन उन्मादग्रस्त भी है। उन्हें नींद नहीं आती, स्मृतिदोष की शिकायत रहती है, वे अवसाद से घिरे रहते हैं, उनके सामने अपनी पहचान का संकट है। वे अपने धन का आनंद नहीं उठा पा रहे हैं। वे आत्मघात कर रहे हैं। उनकी मनोदशा चिन्तित करने वाली है।

इतने धनी लोगों की निजी जिन्दगी में क्या कुछ चल रहा होता है, इसकी खबरें अखबारों, पत्रिकाओं या रेडियो, टीवी पर तो आने से रहीं। परंतु *'अमेरिकन साइकोलॉजिकल रिव्यू'* नामक मासिक पत्रिका के अक्टूबर 2012 अंक में मनोवैज्ञानिकों के लिए रोजगार के इस सर्वथा नए अवसर उभरने के बारे में एक लेख छपा था। इसमें नये-पुराने रईसों को दरपेश मानसिक उलझनें कैसे समझी जाएं और तदनुरूप 'कुशल' मनोचिकित्सा कैसा प्रदान की जाए, इसका उपाय बताया गया था। यह लेख एक *'विशेषज्ञ'* मनोचिकित्सक ने लिखा था, जिन्होंने मनोचिकित्सा के नये रंगरूटों को उनके वर्कशॉप में ही मिल सकने वाले खास प्रशिक्षण की सलाह दी थी। लेख में *'सडन-वेल्थ-सिंड्रोम'* की विकरालता बताते हुए कुछ आंकड़े और इस वर्ग से जुड़ी अनेक पारिवारिक दुर्घटनाओं का उल्लेख था। जैसे एक उदाहरण :—

न्यूयॉर्क के एक वेल्थ-मैनेजमेंट गुरु यानी एक हेज फंड चलाने वाले व्यक्ति के पास पहले ही साल एक करोड़ 17 लाख डॉलर जमा हो गए थे। इस व्यक्ति ने सोचा था कि अब उसकी जिन्दगी किसी निजी टापू पर बड़े ठाट में कटेगी। रकम हाथ में आने के कुछ ही सप्ताह बीते थे कि उसने बीस लाख डॉलर का महलनुमा मकान खरीदा; आठ लाख डॉलर से हीरे-जवाहरात, महंगी कार खरीदी। एक महीना भी नहीं बीत पाया था कि एक महिला से कुछ विवाद होने पर उसने घर को आग लगा दी। अदालत ने उसे जेल भेज दिया। उसके खाते से तीन लाख डॉलर उसके बच्चे की पढ़ाई-लिखाई के लिए अलग रखकर बाकी पैसा जुर्माने के तौर पर वसूल लिया। वह व्यक्ति अब दस साल की कैद काट रहा है।

अचानक लक्ष्मी को आया देख अधिकांश लोगों का दिमाग फिर जाता है। वे अपने को चौराहे पर खड़ा पाते हैं कि अब हमें अपने श्रम से पैसा कमाने की जरूरत नहीं रही। दुनिया हमारे ठेंगे पर! तो ऐसे लोगों को बैंकों के मुलाजिम मनोवैज्ञानिकों की सलाह होती है कि पैसा हाथ में आए तो सबसे पहले हमारे पास आइए। आपको यह जानकर अचरज होगा कि अमेरिका में आर्थिक दिवालिएपन के मामले सुनने वाले जजों का भी एक राष्ट्रीय संगठन है। सन् 2014 में इस संगठन ने एक रिपोर्ट प्रकाशित की थी, जिसमें ऐसे मामलों की विशाल और बढ़ती संख्या पर गंभीर चिन्ता प्रकट की गयी थी कि क्यों कभी अपार संपदा वाले लोग देखते-देखते कंगाल हो रहे हैं। इन्हीं महान जजों ने मनोवैज्ञानिकों का आह्वान किया कि वे अमेरिकी समाज को खोखला करने वाली इस बीमारी का जल्द प्रभावी इलाज खोजें।

पैसा गंवाने का भय अथवा उसे संभालने की उत्तेजना, दोनों से मन में खलबली पैदा होती है। इस मनोविकार की जड़ें गहरी हैं और बैंकों के मनोवैज्ञानिक उसे समझ ही नहीं सकते। हमारी राय में मनोचिकित्सा की किसी भी प्रचलित पद्धति से इसे समझना असंभव नहीं, तो बेहद कठिन अवश्य रहेगा। अपने मन से उठने वाली विचार तरंगों और अपने व्यवहार पर उनके असर का विश्लेषण अगर हम स्वयं करें तो भारतीय परम्परा हमें स्वाध्याय के पास ले जाती है। लेकिन इस नए मनोविज्ञान में *'स्वाध्याय'* जैसी कोई कल्पना नहीं है। स्वाध्याय ईमानदारी से किया गया हो तो वह आदमी को आमूल बदल डालेगा और तब सडन-वेल्थ-सिंड्रोम से पीड़ित आदमी खुद-ब-खुद अपना रास्ता निकाल लेगा। परंतु पश्चिमी पद्धति यानी आधुनिक मनोविज्ञान में यह विश्लेषण मनोचिकित्सक करता है। इसकी वजह यह भी है कि आधुनिक मनोविज्ञान यह भी नहीं मानता कि आदमी आमूल-चूल बदल सकता है। वह मानता है कि अधिक-से-अधिक आदमी स्वयं को प्रचलित व्यवस्था में खपने लायक बना सकता है। अगर प्रचलित सामाजिक व्यवस्था ही दोषपूर्ण हो, तब? बहुत से लोग किसी बात को सही मानते हैं, वह बात सही नहीं मानी जा सकती। धारा से उलटे बहने के लिए बड़े साहस की जरूरत होती है।

हममें से कौन भला इनकार कर सकेगा कि आदमी जितना 'सभ्य' होता गया है, आदमी का अपने साथ धोखा भी उतना ही गहरा होता गया है? मुंह में राम, बगल में छुरी। मन कुछ, आचरण कुछ। इसलिए आचरण को देखकर मन की वास्तविकता पता नहीं की जा सकती। आजकल तो 'सुसंस्कृत' और 'सुसभ्य' आदमी उसे ही मानते हैं जिसके आचरण का जाल इतना बड़ा हो जाए कि उसके मन का पता ही नहीं चल सके। आधुनिकता के दबाव में हम जो बोलते हैं उसके आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि हम क्या सोचते हैं। उलटे हम जो बोलते हैं व हम क्या सोचते हैं, इसे अक्सर

छिपा लिया जाता है। चेहरे पर जो दिखाई देता है, वह वही नहीं होता जो मन में उठता है। उलटे चेहरा, मन में जो उठता है वह दूसरों तक न पहुंच जाए, उसकी रुकावट का साधन बन जाता है। इसलिए आचरण से जाना गया विश्लेषण अधिक से अधिक अनुमान ही हो सकता है। विडम्बना है कि हम खुद भी अपनी गहराइयों में नहीं उतर पाते, या नहीं उतरना चाहते, या नहीं उतरना जानते। इसलिए हम इस ढंग से जीवन ढाल लेते हैं कि दूसरे हमें केवल बाहर से ही जान सकें।

समाज का दबाव है, सो हम अधिकांशतः अपने बाहरी संसार में ही रह जाते हैं। परिणामतः भीतरी मन अछूता रहता है। यानी हमें अपने 'होने' का पता नहीं लग पाता, जिससे मन संकटग्रस्त बना रहता है और बात-बात में हमारी चूलें हिल जाती हैं। जीवन का तानाबाना तो हम सभी के लिए एक जैसा होता है। कमोबेश हम सभी जिन्दगी के एक जैसे रास्तों से गुजरते हैं पर अपने नतीजे हम खुद निकालते हैं। ऐसा *लगता है कि पूरी तरह व्यावसायिक हो चुका आज का मनोविज्ञान स्वस्थ मन क्या है, इसे समझ ही नहीं सका। आपको बता दें कि सारे मनोविकार बीमार आदमी को देखकर तय किये गये हैं। परंतु बीमार मन को देखकर स्वस्थ आदमी के बारे में नतीजे निकालना क्या उचित है? हमारा तो निष्कर्ष है कि व्यावसायिक मनोविश्लेषण, आदमी किस सीमा तक गिर सकता है, इसका ही विश्लेषण है। इससे ठीक विपरीत सर्वोदय का मनोविज्ञान है, जो आदमी के मन की ऊंचाइयों के संबंध में है!*

अमेरिका में 'मनी मीनिंग ऐंड च्वायस' नामक एक मनोविज्ञानशाला है। यह सडन-वेल्थ-सिंड्रोम के इलाज में महारत का दावा करती है। अधिकांश बैंक समय-समय पर उसकी सेवाएं लेते रहते हैं। उसकी इंटरनेट साइट पर बखान किया गया है कि पैसा हाथ में आए तो सबसे पहले हमसे बात करें। हम आपकी भेंट किसी कामयाब निवेश विशेषज्ञ से करा देंगे ताकि आपकी पूंजी बेजा न जाए। फिर हम, यानी 'मनी, मीनिंग ऐंड च्वायस' आपको पैसे के कारण आयी मानसिक उलझनों से खबरदार करते रहेंगे और आपको भटकाव से रोकने के लिए कदम-कदम पर आपके साथ खड़े रहेंगे।

सडन-वेल्थ-सिंड्रोम के जो चार चरण बताए गये हैं, वह कोई नई बात नहीं है। लक्ष्मी के आने या जाने से मनोमय कोष यानी मनो-मस्तिष्क पर पड़ने वाला 'असर' ही इस बीमारी का कारण है, लक्ष्मी स्वयं नहीं। लक्ष्मी का असर हम पर कैसा पड़े, यह हमारे ही हाथों में है!

जीवन की कुछ चीजें हैं, जिन्हें हम कोशिश करके पा सकते हैं। कुछ चीजें ऐसी भी हैं जिन्हें हम कोशिश करके खो सकते हैं। पर जीवन का आनन्द और उल्लास है अ-प्रयास। हम सिर्फ इतना करें कि इसमें कोई बाधा न पैदा करें। ❑

चम्पारण सत्याग्रह शताब्दी सम्मेलन : 23-24 मार्च

निमंत्रण

मान्यवर,

चम्पारण सत्याग्रह अहिंसक आंदोलनों के इतिहास में मील का पत्थर है। यह किसानों का आंदोलन, राष्ट्रीय स्मिता तथा पूंजीवादी साम्राज्यवाद के विरोध का आंदोलन था। इस सत्याग्रह के सौवें वर्ष में भी शोषण, अत्याचार तथा दमन का दौर जारी है। किसानों की दुर्दशा का तो पार ही नहीं। कृषि-प्रधान भारत में हर वर्ष हजारों किसानों को आत्महत्या के लिए मजबूर होना पड़ रहा है।

इस सत्याग्रह की स्मृति एवं सत्याग्रह के नये संकल्पों के लिए 23-24 मार्च, 2017 को मोतीहारी (बिहार) में *'चम्पारण सत्याग्रह शताब्दी सम्मेलन'* आयोजित किया गया है। सम्मेलन का उद्घाटन महात्मा गांधी के प्रपौत्र *श्री तुषार गांधी* करेंगे। *सुश्री मेधा पाटकर, रवीश कुमार, पद्मश्री तुलसी मुंडा, स्वामी अग्निवेश, डॉ. एस. एन. सुब्बराव, पी. वी. राजगोपाल एवं राजेन्द्र सिंह* सम्मेलन के विशिष्ट अतिथि होंगे। सम्मेलन का मुख्य विषय है—***'चम्पारण सत्याग्रह और नव-उपनिवेशवाद'।***

आप मित्रो सहित सम्मेलन में सादर आमंत्रित हैं।

स्थान : एम.एस. कॉलेज, मोतीहारी : 23-24 मार्च, 2017 : 11 बजे

:: हम हैं ::

जयवंत मठकर	आदित्य पटनायक	डॉ. रज़ी अहमद
अध्यक्ष, सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठान	संयोजक, सर्वोदय समाज	मंत्री गांधी स्मारक संग्रहालय, पटना
किशन गोरडिया	भवानीशंकर कुसुम	त्रिभुवन नारायण सिंह
संयोजक, सद्भावना संघ	संयोजक, संपूर्ण क्रांति राष्ट्रीय मंच	अध्यक्ष, बिहार सर्वोदय मंडल
डॉ. रामजी सिंह	तपेश्वर भाई	रामशरण
पूर्व सांसद		
ब्रजकिशोर सिंह	हरिनारायण ठाकुर	महादेव विद्रोही
संरक्षक, सम्मेलन स्वागत समिति	स्वागताध्यक्ष, सम्मेलन स्वागत समिति	अध्यक्ष, सर्व सेवा संघ
मंत्री, गांधी स्मारक संग्रहालय	प्राचार्य, एम.एस. कॉलेज	सेवाग्राम, वर्धा

सम्पर्क : सर्व सेवा संघ, प्रधान कार्यालय, महादेव भाई भवन, सेवाग्राम-442102, वर्धा (महाराष्ट्र), फोन : 07152-2840-61/91, E-mail : sarvasevasangha@hotmail.com पर किया जा सकता है।

आपसी सौहार्द का अर्थशास्त्र बनाम कैशलेस

❑ **भारत डोगरा**

भारत के गांवों में नकदी का प्रचलन कभी भी बहुत अधिक नहीं रहा। हरित क्रांति के बाद के 50 सालों में कृषि के बदलते स्वरूप के चलते गांवों में नकदी का प्रचलन बढ़ता चला गया। सरकार की वर्तमान कैशलेस योजना, उसकी दिशा एवं प्रभाव में कई आशंकाएं पैदा हुई हैं तथा समाज के आपसी सहयोग में भी कमी दिख रही है। **–सं.**

आज सरकार बार-बार जिस कैशलेस (नकदी रहित) व्यवस्था की ओर जाने के लिए कह रही है वह एक ऐसी कैशलेस व्यवस्था होगी, जो बड़ी कंपनियों के नियंत्रण में रहेगी। पर एक अलग तरह की कैशलेस व्यवस्था बहुत पहले से हमारे गांवों में चली आ रही थी। यह गांवों की परंपरागत कैशलेस व्यवस्था आत्मनिर्भरता और आपसी सहयोग पर आधारित थी।

इस 'कैशलेस' व्यवस्था में कैश यानि नकदी की न्यूनतम उपयोगिता के दो आधार थे। पहला आधार यह था कि प्रकृति व स्थानीय प्राकृतिक संसाधनों की बेहतर समझ के आधार पर खेती-किसानी व इससे मिले जुले विभिन्न कार्य किये जाते थे। इस तरह स्थानीय निःशुल्क प्राकृतिक संसाधनों का बेहतर से बेहतर उपयोग कर खेती-किसानी की जाती थी। इससे रासायनिक खाद-कीटनाशक दवा, बाहरी बीज, डीजल आदि खरीदने की कोई जरूरत नहीं पड़ती थी। इस तरह 90 प्रतिशत या उससे भी अधिक कृषि कार्य बिना बाहरी उत्पादों पर कोई नकदी खर्च किये ही हो जाता था।

पर पूंजीवादी व्यवस्था व उसके असर में चलने वाली सरकारों को यह स्वीकार्य नहीं था। *पूंजीवादी सोच कहती है कि जब तक किसान और गांव आत्मनिर्भर हैं, तब तक उसका शोषण नहीं हो सकेगा। उसका शोषण तो तभी हो सकेगा जब वह बाजार पर अधिक से अधिक आश्रित होगा। अतः तरह-तरह की तिकड़म अपनाकर किसान व गांव की आत्मनिर्भरता को समाप्त किया गया वह इस विनाशकारी कार्य को स्वीकृति दिलवाने के लिए इसे कृषि विकास, हरित क्रांति, श्वेत क्रांति, नीली क्रांति जैसे अनेक नाम दिये गये।*

परम्परागत ग्रामीण व्यवस्था के कैशलेस होने का दूसरा मुध्य आधार यह था कि लागों में आपसी सहयोग था। जब श्रम की अधिक जरूरत होती थी जैसे फसल की कटाई के वक्त, तो विभिन्न परिवार एक दूसरे का बहुत हाथ बंटाते थे। इस कारण भारी कम्बाईन हारवेस्टर जैसी महंगी मशीनों को खरीदने या किराए पर लेने की जरूरत कभी नहीं पड़ती थी।

पर जब तक लोग आपसी सहयोग से ही अधिकतर काम मुकम्मल करते रहते हैं, तब तक पूंजीवादी व्यवस्था को गांव में दखल देने व पैर जमाने की जगह बहुत कम मिलती है। अतः *पूंजीवादी व्यवस्था व उसके नियंत्रण में चल रही सरकारों के लिए यह भी जरूरी था कि गांववासियों के आपसी सहयोग की व्यवस्था को निरंतर कम किया जाए या तोड़ा जाए।*

इस तरह गांवों में जो 'कैशलेस' परम्परागत व्यवस्था आत्मनिर्भरता व आपसी सहयोग पर आधारित थी, वह पूंजीवादी व्यवस्था के लिए असहनीय थी। उसे पहले कमजोर किया गया व बाद में तोड़ दिया गया। इस तरह परम्परागत कैशलेस व्यवस्था कमजोर होती गयी व उसकी जगह नकदी व बाजार का आधिपत्य हो गया।

अब इस स्थिति में निरंतर उग्र होते पूंजीवाद द्वारा जिस कैशलेस व्यवस्था की बात की जा रही है वह बहुत अलग किस्म की व्यवस्था है जो भूमंडलीकरण व बड़ी कंपनियों के नियंत्रण में रहेंगी। यह कैशलेस व्यवस्था आत्मनिर्भरता बढ़ाने वाली नहीं है बल्कि निर्भरता बढ़ाने वाली है। यह नई कैशलेस व्यवस्था बड़े कारोबारी के पक्ष में है, छोटे कारोबारियों के प्रतिकूल है और मॉल के पक्ष में है, गली-मोहल्ले की दुकान के विरुद्ध है।

जहां सरकार जोर-शोर से नई कैशलेस व्यवस्था के प्रचार से जुड़ी है, वहां उससे यह भी पूछना चाहिए कि परम्परागत कैशलेस व्यवस्था जो पहले से चली आ रही थी उसे किसने और क्यों तोड़ा? ❑

'सर्वोदय जगत' के सभी सुहृद पाठकों, शुभचिन्तकों, लेखकों की सुविधा की दृष्टि से पत्रिका का हर अंक सर्व सेवा संघ प्रकाशन की वेबसाइट www.sssprakashan.com पर उपलब्ध है। –सं.

नदी को अविरल बहने दें

❑ वीरेन्द्र पैन्यूली

बांध बनाकर पानी रोकने से नैसर्गिक पर्यावरण नष्ट हो रहा है। इसके कारण जमा हो रही गाद अंततः मुख्य नदी के साथ ही साथ सहायक नदियों को भी मार देती है। आवश्यकता है कि नदियों को अविरल बहने दें जिससे कि जल-संकट समाप्त हो। **–सं.**

अगस्त-सितम्बर, 2016 में कर्नाटक और तमिलनाडु के बीच कावेरी नदी के पानी को छोड़े जाने को लेकर बेहद उग्र वातावरण बना हुआ था। सर्वोच्च न्यायालय भी अपने आदेशों को लागू करवाने में मुश्किलों का अनुभव कर रहा था। लगभग उसी समय 2016 अगस्त में बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने प्रधानमंत्री से बिहार की तत्कालीन भयंकर बाढ़ की स्थिति पर मिलने से पहले व बाद में बिना लाग लपेट के सार्वजनिक रूप से यह बयान दिया था, कि बंगाल में गंगा पर बना फरक्का बांध अपने पीछे जो मलवा व गाद जमा करता जा रहा है, उसके कारण साधारण बरसात होने पर भी उथली गंगा अपने किनारों के आस-पास फैल कर उनके राज्य में तबाही मचा देती है। बैराजों एवम बांधों से जगह-जगह बंधी नदियों में कई बार इतना पानी नहीं रहता जो मलवा/गाद को आगे ढकेल सके। नीतीश का दो टूक कहना था कि बिना अविरल गंगा के निर्मल गंगा और नमामि गंगे जैसे लक्ष्य पाना असंभव होगा।

पर्याप्त पानी न रहने से व प्रवाह की गति में कमी से नदियों की अपने को स्वतः साफ रखने की क्षमता में भी कमी आती है। यह एक तरह से नदियों और उन पर बने बांधों के कारण उपजी समस्याओं के समाचार भी थे। समाचारों की सुर्खियां बाधित नदियों के पानी के बहाव, उनकी अविरलता के मुद्दे को गंभीरता से समझने की सामयिकता व अनिवार्यता का आह्वान भी थीं। किन्तु तब बात आयी गयी कर दी गयी थी। अब पंजाब सरकार सर्वोच्च न्यायालय के आदेश की उपेक्षा करती हुई सतलज-यमुना लिंक नहर पर पड़ोसी राज्यों के साथ जो रुख अपना रही है, उस कारण भी आज नदियों की ज्यादा से ज्यादा अविरलता के लाभों को समग्रता में समझने की जरूरत आन पड़ी है। वर्तमान में हरियाणा व पंजाब में भी नहरों में पानी छोड़ने से सम्बन्धित आदेश की अवहेलना के मामले को लेकर तलवारें खिंची हुई हैं। दूसरी तरफ हरियाणा व दिल्ली भी बंधे पाने को दिल्ली के लिए छोड़े जाने को लेकर टकराव में रहते हैं। आगरा मथुरा पानी रहित यमुना के नाले बनने से चिन्तित हैं। वे वहां यमुना में और पानी पहुंचाने के लिए आंदोलन भी करते रहते हैं। हालांकि सुर्खियों में अक्सर केवल गंगा को अविरल बनाने का ही मामला आता है।

नीतीश के दो टूक बयान के पहले गंगा या अन्य नदियों पर बने अवरोधों से पर्याप्त पानी छोड़े जाने का मामला अधिकांशतया कुंभ आदि बड़े स्नान या पर्वों के समय संत समाज की ओर से धर्मनगरियों या तीर्थपुरोहितों द्वारा ही उठाये जाने वाला मामला माना जाता रहा है। जो लोग विज्ञान सम्मत या पर्यावरण सम्मत गंगा अविरलता की बात भी करते थे, उन्हें विकास विरोधी करार दिया जाता रहा है। धार्मिक भावनाओं को संतुष्ट करने के लिए ऐसे-ऐसे सुझाव भी दिये गये कि बांधों के किनारे से नदियों की एक सीधी धार छोड़ दी जायेगी। परंतु यह पारिस्थितिकीय आवश्यकताओं को कहां तक पूरा कर सकती है?

अपने देश में भी नदियों पर बने बांधों व बैराजों को लेकर अंतरराज्यीय या अंतर्राष्ट्रीय अनुभव यही दिखाता है कि बांध, बैराज बनाकर हम पानी रोकें तो सब ठीक। दूसरा रोके तो धमकी, कड़ुवाहट, राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय न्यायालयों में मामले को घसीटने का सिलसिला शुरू हो जाता है और इसे राजनैतिक भी बना दिया जाता है। उत्तराखंड व उत्तर प्रदेश का ममाला तो अनोखा है। परन्तु गनीमत है कि अभी इस पर कोई बड़ी लड़ाई नहीं चली है। उत्तराखंड में गंगा व अन्य नदियों पर बने बैराजों से कब कितना पानी छोड़ा जायेगा या कब बिल्कुल रोक दिया जायेगा, यह उत्तर प्रदेश सरकार तय करती है। हम हरिद्वार में जिस गंगा को हर की पैड़ी या अन्य घाटों में देखते हैं उसकी हकीकत तब मालूम चलती है, जब वार्षिक बन्दी के क्रम में उत्तर प्रदेश सरकार बैराजों से हरिद्वार के घाटों पर पानी का पहुंचना रोक देती है और जगह-जगह पवित्र घाटों में जो कुछ पानी पहुंचता है, वह दर्जनों गंदे नालों का जल-मल होता है। परंतु बात यहीं पर नहीं रुकती अब भगीरथी पर बने टिहरी बांध, श्रीनगर में बने श्रीनगर बांध व कोटेश्वर बांध की वजह से बरसात के मौसम को छोड़ दें तो आये दिन ऋषिकेश के पास लक्ष्मणझूला के नीचे स्वर्गआश्रम के सामने कभी भी ऐसी स्थितियां बन जाती है कि गंगा में पानी इतना

कम हो जाता है कि नावों का चलना रोक दिया जाता है। नदियों पर बने बांध व बैराजों से मनमाने ढंग से पानी छोड़े जाने से पूरे देश में कई हादसे हुए हैं।

कानपुर या अन्यत्र भी गंगा के प्रदूषण को कम करने के लिए, उसको बहाने के लिए भी गंगा में पर्याप्त मात्रा में गतिमान साफ जल की आवश्यकता है। गंगा या अन्य नदियों में पानी को शुद्ध रखने में मछली व अन्य जलचरों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। साथ ही यह भी निर्विवाद है कि नदी में बड़े या छोटे बांधों के बने अवरोधों से मछलियों के प्रजनन, संख्या, आयु व झुण्डों पर असर पड़ता है। उत्तर प्रदेश, बिहार, दिल्ली व बंगाल के अध्ययन ही नहीं, किन्तु खुद उत्तराखंड में हुए अध्ययन भी इन तथ्यों की पुष्टि करते हैं।

गंगा में पर्याप्त पानी न होने के कारण बड़े स्टीमरों, नौकाओं व जहाजों के तटों तक आने, परिचालन व नौका परिवहन पर भी असर पड़ रहा है। बंगलादेश को भी भारत से इन्हीं संदर्भों में शिकायत है। वैज्ञानिकों का यह कहना है कि यदि उत्तराखंड से ही मैदानों की ओर बहने वाले गंगा के पानी को मैदानों तक पहुंचने में बहुत ही सीमित कर दिया जायेगा, तो गंगा नाम के लिए तो गंगा रहेगी। उसमें एक चौथाई से भी कम मूल गंगा का पानी मिला होगा।

आज विश्व में नदियों के अविरल प्रवाह की बात, धार्मिक कारणों से ही नहीं, वैज्ञानिक व पर्यावरणीय कारणों से भी की जा रही है। कई बने बांधों को तोड़ने की भी योजनाएं बनायी जा रही हैं। कुछ देशों में बांधों को एक निश्चित समय का आयु प्रमाणपत्र दिये जाने का भी प्रावधान है। इस काल तक उनको उपयोग व जोखिमरहित माना जाता है। उदाहरण के लिए, अमेरिका में अक्सर ऐसे प्रमाणपत्र 50-60 वर्षों के दिये गये हैं। अतः उनके तोड़ने या जारी रखने की भी प्रक्रिया पर विचार किया जाना जरूरी होता है। अपने देश के उदाहरण से भी इस बात को समझें। टिहरी बांध की आयु का विवाद चर्चा में रहा। जहां बांध विरोधी इसकी उपयोगी आयु पचास साल से ज्यादा न होने की आशंका शुरू से ही जताते रहे हैं, वहीं बांध समर्थक, इसे सौ साल का होने का दावा करते हैं। सौ साल या उससे ज्यादा भी मानें तो इसके बाद क्या होगा? डूबी हुई घाटियां व डूबा हुआ गणेशप्रयाग तो नहीं लौटेगा।

अब वैज्ञानिक व इंजीनियरिंग देख-रेख में बांधों को नष्ट कर नदियों के अविरल बहाव को बनाने के काम भी शुरू हुए हैं। अमेरिका में इस तरह के कई बांधों के अवरोध हटाया जाना अब सामान्य होता जा रहा है। वर्ष 2012 में अमेरिका में इलवाह नदी जलागम पर बने बांध को हटाने का निर्णय भी काफी चर्चा में रहा। अधिकांश लोगों का मत है कि बांध को बनाये रखने से ज्यादा लाभ बांध को तोड़ने में है। वर्ष 2013 में भारत में भी एक संगठन ने टिहरी बांध को नियंत्रित तरीके से तोड़ने का सुझाव दिया था। ऐसा नहीं है कि गंगा की अस्मिता की लड़ाई आज ही शुरू हो रही है। यह लड़ाई सन् 1837 में हरिद्वार में गंगा को पहली बार बांधने के प्रयासों के समय ही शुरू हो गयी थी। ❑

सर्व सेवा संघ का 85वां अधिवेशन चम्पारण में

सर्व सेवा संघ (अ. भा. सर्वोदय मंडल) का 85वां अधिवेशन 25 मार्च, 2017 (शनिवार) को सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष श्री महादेव विद्रोही की अध्यक्षता में *सुबह 10 बजे एम.एस. कॉलेज मोतीहारी (बिहार)* में होगा।

अधिवेशन के विचारणीय विषय

1. दिवंगतों को श्रद्धांजलि
2. दिल्ली अधिवेशन के कार्यवाही की पुष्टि
3. महामंत्री की रिपोर्ट
4. अध्यक्ष की अनुमति से अन्य विषय
5. सर्व सेवा संघ के अगले अध्यक्ष का निर्वाचन

कैसे पहुंचे : देश के अनेक भागों से 'बापूधाम मोतीहारी (रेलवे कोड-BMKI) की सीधी गाड़ियां हैं। यहां से मुजफ्फरपुर 83 किमी है। मुजफ्फरपुर के लिए राजधानी एक्सप्रेस सहित अनेक गाड़ियां उपलब्ध हैं। मुजफ्फरपुर से मोतीहारी के लिए अनेक गाड़ियां तथा बस उपलब्ध हैं। पटना से मोतीहारी की दूरी 155 किमी है। यहां से भी आधे घंटे के अंतराल पर बसें मिलती रहती हैं।

स्थानीय संपर्क : श्री विनय कुमार, मंत्री, पूर्वी चम्पारण जिला सर्वोदय मंडल, मो. : 9470775653/8521575300/7979008653, ई-मेल : vinaykumar91272@gmail.com

नोट : 1. अपने पहुंचने की निश्चित जानकारी सर्व सेवा संघ, प्रधान कार्यालय, महादेव भाई भवन, सेवाग्राम-442102, वर्धा (महाराष्ट्र), फोन नं. 07152-284061 एवं 284091, ई-मेल : sarvasevasangha@hotmail.com पर अवश्य दें, ताकि तद्नुसार व्यवस्था की जा सके।

2. ओढ़ने-बिछाने के कपड़े अपने साथ लायें।

3. अधिवेशन होली के थोड़े समय के बाद हो रहा है। अतः अंतिम समय की परेशानी से बचने के लिए अपना रेल आरक्षण तुरंत करवा लें।

विशेष सूचना : *दोपहर बाद 24 मार्च, 2017 को इसी स्थान पर सर्व सेवा संघ राष्ट्रीय कार्यसमिति* की बैठक होगी।

–शेख हुसेन, महामंत्री

अनुपम के बिना आया नया साल 2017

❑ राजकुमार कुम्भज

अनुपम जी से जो भी मिला उसने उनको अपने हिसाब से देखा समझा। परंतु सबकी साझा समझ में यह तो था ही उनके जैसे विनयशील और समाज के प्रति समर्पित व्यक्तित्व बिरले ही होते हैं। उनका अपने बीच न होना एक कष्टकर स्थिति है। हमें लगता है कि ''अनुपम के बिना नया साल आया है।'' बहुतों को भाया नहीं। **–सं.**

प्रख्यात गांधीवादी अनुपम मिश्र सच्चे अर्थों में अनुपम थे। वह पानी मिट्टी पर शोध के अलावा चिपको आंदोलन में भी सक्रिय रहे, वे कर्म और वाणी के अद्वैत योद्धा थे। बड़ी से बड़ी सच्चाई को भयरहित स्वार्थरहित दोषरहित और पक्षपातरहित बोल देने के लिए प्रतिबद्ध थे। अनुपम मिश्र गांधी शांति प्रतिष्ठान के ट्रस्टी और राष्ट्रीय गांधी स्मारक निधि के उपाध्यक्ष रहे। वह ऐसे पहले भारतीय थे, जिन्होंने पर्यावरण पर ठीक तब से काम और चिन्तन शुरू कर दिया था जबकि देश में पर्यावरण का कोई भी सरकारी विभाग तक नहीं था। उन्होंने हमेशा ही परम्परागत जलस्रोतों के संरक्षण, प्रबंधन तथा वितरण के संदर्भ में अपनी आवाज बुलंद की। अनुपम मिश्र की पहल पर ही गांधी प्रतिष्ठान में पर्यावरण अध्ययन कक्ष की स्थापना हुई थी जहां से 'हमारा पर्यावरण और देश का पर्यावरण' जैसी महत्त्वपूर्ण पुस्तक आयी।

वह अकसर कहा करते थे कि पूरा भारत देश ही मेरा घर है। राजस्थान के अलवर में मृतप्राय अरवरी नदी को पुनर्जीवित करने का उनका संकल्प कैसे भुलाया जा सकता है? अरवरी नदी के पुनर्जीवन ने उन्हें नयी पहचान से लबालब कर दिया। राजस्थान के ही लापोडिया और उत्तराखंड में परम्परागत जलस्रोतों को दोबारा जीवित कर देने में भी उनका सराहनीय योगदान रहा था। बावजूद इसके उनकी विशेषताएं यही थीं कि वे कभी भी अपने द्वारा सुझाए या संपादित किये गये काम पर किसी भी तरह के निजी श्रेय का दावा नहीं करते थे।

उन्होंने अपनी उपलब्धियों को कभी भी अपने सरल तत्त्व यानी सहजता पर हावी ही नहीं होने दिया। उनका होना पानी का होना था। उनका होना पानीदार आदमी का होना था। उनका होना साधारण में असाधारण का होना था। उनका होना गांधी के न होने वाले वक्त में गांधी मार्ग का होना था। अनुपम मिश्र इसलिए भी अनुपम थे कि उन्होंने हमें मनुष्यों पर विश्वास करना सिखाया। वे मानते थे जो विश्वास करता है वही मनुष्य है।

पर्यावरण के लिए सतत चिन्ता और चिन्तन करते रहने वाले अनुपम मिश्र ने दूसरी संस्थाओं सहित सरकारों को भी पर्यावरण के लिए चिन्ता और चिन्तन करना सिखाया। उनकी चिन्ता और चिन्तन के केन्द्र में सिर्फ किसी भूखंड पर तालाब का होना और तालाब में पानी का होना ही महत्त्वपूर्ण नहीं था। बल्कि उन्होंने अपने व्यवहार से यह तक प्रतिष्ठित किया था कि आदमी की आंखों में भी पानी का होना कितना जरूरी है।

नब्बे के दशक की शुरुआत में जब अनुपम मिश्र की लिखी पुस्तक आज भी खरे हैं तालाब प्रकाशित हुई तब तक हमारे समाज में पर्यावरण को लेकर कोई खास गंभीरता दिखायी नहीं देती थी और पानी का प्रबंधन तो बहुत दूर की कोई कौड़ी हुआ करती थी। नदियां आज जितनी जहरीली नहीं हुई थीं और गंगा भी कमोवेश गंदगी से अछूती कही जा सकती थी। पीने के पानी का भी इस कदर बाजारीकरण नहीं हुआ था। किन्तु अनुपम मिश्र की चिन्ताएं भविष्य के संकट को भलीभांति भांप रही थीं।

उन्होंने अपने समाज से जिस भाषा से संवाद किया उस भाषा का भी उनकी चिन्ताओं पर गहरा प्रभाव दिखायी देता है। वे जिस भाषा में बोलते और लिखते थे, वह लोगों को भीतर तक छू जाने वाली अपनी सी लगने लगती थी। अन्यथा नहीं है कि अनुपम मिश्र के कवि पिता भवानी प्रसाद मिश्र भी अपनी बात जिस भाषा में बोलते थे उसी भाषा में लिखते थे। प्रख्यात समाजवादी चिन्तक डॉ. राममनोहर लोहिया भी ऐसी ही भाषा और मुहावरों में अपनी बात कहते थे कि वह समाजवादी चिन्तन धारा से निकले एक गांधीवादी विचारक थे। समाजवाद और गांधीवाद उनके रग-रग में रच-बस गये थे।

गांधी शांति प्रतिष्ठान से प्रकाशित होने वाली पत्रिका गांधी मार्ग के हरेक अंक और हरेक पृष्ठ पर उनकी अनुपम संपादकीय दृष्टि देखी जा सकती है। अपने मुद्दों और आग्रहों पर कायम रहने की उनमें एक जिद तो थी लेकिन वहां बड़ बोलापन और दोहराव नहीं होता था। वहां भाषा की परवाह थी और खामियों से मुक्ति होती थी। किन्तु उनकी समूची सोच किसी भी दृष्टिकोण से मात्र अकादमिक अनुसंधान नहीं थी बल्कि लोक-संवाद और लोकविद्या से ही जुड़ी थी। लोक और समाज से उनका रिश्ता इतना विस्तृत और इतना विविध था कि वे जीवनपर्यंत समाज को कुछ सिखाने की बजाय समाज से सीखने की ही बात दोहराते रहे।

नदियों को अपनी आजादी चाहिए। इंसानों जैसी आजादी चाहिए। जब से हमने नदियों की आजादी छीनी है नदियां नाला बनकर रह गयी हैं। जैसा मौलिक विचार देने वाले अनुपम मिश्र नदियों को लेकर स्पष्ट मत था कि जब लोग नदियों से जुड़ जायेंगे, तो फिर नदियों को नदियों से जोड़ने की जरूरत ही नहीं रह जायेगी। सरकार को, सरकारी अफसरों को और नेताओं को जाहिर है कि जनता के बीच जाकर जनता से संवाद करना चाहिए। देश में हो रहे मौजूदा विकास से होने वाले खतरों के प्रति वे हमेशा आगाह

करते रहे। 'आज भी खरे हैं तालाब' इसका प्रमाण है। उनकी इस पुस्तक में कश्मीर से कन्याकुमारी तक और गोवा से गुवाहाटी तक समूचे भारत में फैले पानी के अद्वितीय जल प्रबंधन का खुलासा उपलब्ध है। उन्होंने परम्परागत भारतीय जल प्रबंधन पर दो मूल्यवान पुस्तकें लिखी थीं आज भी खरे हैं तालाब (1993) और राजस्थान की रजत बूंदें (1995) नपे तुले शब्दों में प्रामाणिक बातें करना उनकी लेखकीय प्रतिभा का प्रमाण था। 'आज भी खरे हैं तालाब' की खूबी यह थी कि वह अनेकों भाषाओं में अनूदित हुई। किन्तु यह तथ्य वाकई विस्मयकारी रहा कि उन्होंने अपनी इस पुस्तक की कभी कोई रायल्टी नहीं ली। आज भी खरे हैं तालाब आज भी कॉपीराइट से मुक्त किताब है कोई भी कहीं भी कभी भी चाहे जितनी प्रतियां स्वतंत्रतापूर्वक छाप सकता है।

वे सच्ची वैज्ञानिकता और सच्ची साहित्यिक गहराई से अपने काम में जुट जाते थे। उन्हें सच बोलने के लिए किसी भी आडम्बर अथवा नाटकीयता की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। वे एक ऐसे सीधे-सच्चे आदमी थे, जो किसी भी सच को सम्पूर्ण व सीधे-सीधे ही बोल देते थे। उनके सोच विचार की प्रक्रिया और जीवनक्रम में प्राकृतिक तौर पर प्रकृति और सिर्फ प्रकृति समाहित थी। उन्हें एक खास अर्थ में प्रकृति पुरुष भी कहा जा सकता है। वह मानते थे कि पारम्परिक कृषि हवा रोशनी और पानी पर सबका समान अधिकार था। सिंचाई के अपने संसाधन थे। सामूहिकता का सफल जीवन-दर्शन था। किसान के पास पालतू जानवर थे। जिनसे आय भी मिलती थी और खाद का बंदोबस्त भी हो जाता था। किन्तु वह सब पता नहीं कहां चला गया? आज सब कुछ बिक रहा है। कौन नहीं जानता है कि आज का सबसे बड़ा सवाल पानी और पर्यावरण ही है? जल-जंगल और जमीन की मूल्य बताकर विनयशील अनुपम मिश्र ने वक्त से पहले ही विदा ले गये। ❑

कविताएं

अधिनायक वह महाबली

❑ रघुवीर सहाय

राष्ट्रगीत में
भला कौन वह
भारत भाग्य विधाता है
फटा सुथला पहने
जिसका
गुन हरचरना गाता है।

मखमल टमटम
बल्लम तुरही
पगड़ी
छत्र चँवर के साथ
तोप छुड़ाकर
ढोल बजाकर
जय-जय कौन कराता है।

पूरब-पश्चिम से
आते हैं
नंगे-बूचे नरकंकाल
सिंहासन पर बैठा,
उनके
तमगे कौन लगाता है।

कौन-कौन है,
वह जन-गण-मन
अधिनायक वह महाबली
डरा हुआ मन
बेमन जिसका
बाजा रोज बजाता है। ❑

ये कोई इस्लाम नहीं है

❑ निरा फाजली

हर बार यह इजलाम रह गया...!
हर काम में कोई
काम रह गया!!
नमाजी उठ-उठ कर चले गये
मस्जिदों से...!
दहसतगरों के हाथ में
इस्लाम रह गया!!

खून किसी का गिरे यहां
नस्ल-ए-आदम का खून है आखिर
बच्चे सरहद पार के ही सही
किसी की छाती का सुकून है आखिर
खून के नापाक ये धब्बे
खुदा से कैसे छिपाओगे?
मासूमों के कब्र पर चढ़कर,
कौन से जन्नत जाओगो?

कागज पर रखकर रोटियां
खाऊं तो भी कैसे...
खून से लथपथ आता है
अखबार भी आजकल जैसे
दिलेरी का हरगिज ये काम नहीं है
दहशत किसी महजब का
पैगाम नहीं है...

तुम्हारी इबादत, तुम्हारा खुदा,
तुम जानो
हमें पक्का यकीन है
ये कतई इस्लाम नहीं है...!! ❑

गुट निरपेक्ष आंदोलन की निरंतरता जरूरी

❑ मार्टिन खोर

औपनिवेशिक शासन के फंदे से निकले देशों यानी विकासशील देशों के अधिकारों व हितों की रक्षा को लेकर गुट निरपेक्ष आंदोलन का शानदार इतिहास रहा है। शीतयुद्ध समाप्त होने के बाद भी 120 देशों की सदस्यता वाला गुट निरपेक्ष आंदोलन (नाम) नामक यह संगठन आज भी प्रासंगिक बना हुआ है। अब दुनिया में दो खेमे (पश्चिम एवं सोवियत रूस) नहीं बचे हैं, जिनके खिलाफ यह आंदोलन विकसित हुआ था। परंतु विकासशील देश आज भी कुछ विकसित देशों के प्रभुत्व का शिकार हो रहे है, जिनका कि वैश्विक अर्थव्यवस्था पर नियंत्रण है। इसके अतिरिक्त अनेक देशों को उनकी सार्वभौमिकता बनाये रखने में खतरा महसूस हो रहा है। महाशक्तियां अपनी ताकत का इस्तेमाल कर नापसंदगी वाले नेताओं से छुटकारा पा लेंगी। इतना ही नहीं उन पर आर्थिक प्रतिबंध जैसे तमाम अस्त्रों की बमबारी भी की जा सकती है।

इराक और अफगानिस्तान पर हमला, लीबिया पर बमबारी, इन तीनों देशों में सत्ता परिवर्तन, क्यूबा के खिलाफ आर्थिक रोक एवं इरान के खिलाफ आर्थिक प्रतिबंध और फिलिस्तीन पर अवैध कब्जे की निरंतरता, ऐसे तमाम उदाहरण हैं, जिससे सिद्ध होता है कि विकासशील देश अभी भी उपनिवेशवाद की काली छाया से पूर्ण मुक्त नहीं हुए हैं एक संगठन का संरक्षण उनके लिए लाभकारी है भले ही वह मात्र नैतिक ही क्यों न हो। इसके माध्यम से वह सैन्य आक्रामकता के खतरों के बीच भी राहत महसूस कर सकते हैं। इस वर्ष आंदोलन का सम्मेलन वेनेजुएला में हुआ, जिसकी विषयवस्तु थी, ''विकास के लिए शांति, सार्वभौमिकता और एकजुटता।'' इस सम्मेलन में 120 देशों के राजनीतिज्ञों एवं अधिकारियों के अलावा कई प्रेक्षक देशों एवं संगठनों ने भी भागीदारी की थी।

गुट निरपेक्ष आंदोलन की स्थापना 55 वर्ष पूर्व आधुनिक इतिहास के उस काल में हुई थी जब तमाम गुलाम देशों ने सद्य स्वाधीनता प्राप्त की थी। महान राजनीतिज्ञों, भारत के जवाहर लाल नेहरू, इंडोनेशिया के सुकार्णो, घाना के क्वा मेन्यूरा, मिस्त्र के गमाल अब्दुल नासिर एवं युगोस्लाविया के मार्शल जोसिफ टीटो, जो कि नव स्वतंत्र देशों के प्रतीक थे, ने उपनिवेशवाद के खिलाफ साझा आकांक्षाओं का एक मंच स्थापित किया था। शीतयुद्ध में बटे विश्व में इन देशों ने तय किया था कि वे 'गुट निरपेक्ष' रहेंगे और वैश्विक मामलों में एक संतुलित भूमिका व रवैया अपनायेंगे। आंदोलन ने नस्लवाद के खिलाफ सफल संघर्ष में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी और अभी भी वह फिलिस्तीन के स्वतंत्रता संघर्ष में एकजुटता दर्शा रहा है। न्यूययार्क एवं जेनेवा स्थित संयुक्त राष्ट्र संघ साधारण सभा एवं मानवाधिकार परिषद और अन्य इकाइयों में भी आंदोलन महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। यहां तक कि पिछले दशकों से चल रहे संघर्ष जिनमें नये अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक आधार, विकास का अधिकार और विकासशील देशों के हितों को लेकर हो रहे समझौते और विमर्शों में भी गुट निरपेक्ष आंदोलन ने सार्थक भागीदारी की है।

सम्मेलन के उद्घाटन भाषण में वेनेजुएला के राष्ट्रपति निकोलस माडुरो ने आंदोलन के इतिहास का तीन हिस्सों में वर्गीकरण किया। उनके अनुसार पहला फेज है सन् 1955 में बांडुंग सम्मेलन में स्थापना के वर्षों से लेकर सन् 1962 में बेलग्रेड में गुट निरपेक्ष आंदोलन की स्थापना और फिर यहां से सोवियत संघ के विघटन होने तक का। दूसरा हिस्सा (फेज) है एकध्रुवीय विश्व के रूप में अमेरिका का स्थापित होना और एकमात्र महाशक्ति के रूप में देशों पर अपना प्रभुत्व जतलाना। इसका तीसरा हिस्सा (फेज) है वर्तमान काल जिसमें एकध्रुवीय विश्व से शक्ति का विकेन्द्रीयकरण और दक्षिण (गरीब) के कुछ देशों का उत्थान जिससे कि एक अधिक संतुलित विश्व निर्मित होने की संभावनाएं बनती जा रही हैं।

सम्मेलन में राजनीतिक प्रस्ताव पारित होने के अलावा एक 200 पृष्ठ का दस्तावेज भी तैयार किया गया है जो कि आंदोलन के समक्ष सभी महत्त्वपूर्ण मुद्दे प्रस्तुत करता है। सम्मेलन के घोषणापत्र में साफ कहा गया है कि विकासशील देश ही ऐसे अंतर्राष्ट्रीय कानूनों की अवहेलना, हमलों, घुसपैठ, युद्ध और सशस्त्र संघर्षों से सर्वाधिक प्रभावित होते हैं जो कि वस्तुतः शक्ति के बड़े केन्द्रों के भौगोलिक राजनीतिक हित में होते हैं। इसमें गुट निरपेक्ष आंदोलन के गठन के सिद्धांतों और उपलब्धियों पर भरोसा जताया गया है। ❑

शहादत दिवस पर सामूहिक उपवास

चम्पारण सत्याग्रह शताब्दी वर्ष आयोजन समिति के फैसले के अनुसार संयुक्त चम्पारण और मुजफ्फरपुर के मुसहरी प्रखंड के 64 ग्राम पंचायतों में 30 जनवरी को सामूहिक उपवास रखा गया। उपवास ग्राम पंचायत सरकार के पंचायत भवन व मुखियाजी के निवास के सामने हुआ। 5 से 200 की संख्या में ग्रामीण उपवास पर बैठे। इस उपवास कार्यक्रम के द्वारा पर्चाधारियों ने मुखियाजी के द्वारा बिहार के मुख्यमंत्री और जिला पंचायत परिषद के अध्यक्ष को मांगपत्र भेजा। इस मांगपत्र में पर्चे की भूमि पर दखल-देहानी कराने, सिलिंग के वादों को तीन माह के अंदर निष्पादित कराने और वास भूमि अधिकार के लिए अधिनियम बनाने की मांग शामिल है। ग्रामीणों ने भूमि अधिकार के साथ ही शिक्षा एवं स्वास्थ्य से जुड़े सवाल भी मांगपत्र में जोड़ा।

–पंकज

घोषणापत्र की 21 प्रतिबद्धताओं में आंदोलन का पुनः सशक्तिकरण, संवैधानिक सरकारों के अवैध तख्तापलट और सामूहिक संहार के हथियार खासकर परमाणु हथियारों की समाप्ति को दोहराया गया है। इसमें स्वनिर्धारण के अधिकार पर भरोसा जताया गया है और मनमाने ढंग से प्रतिबंध लगाने को गलत बताया गया है। साथ ही स्वविकास के अधिकार पर भी जोर दिया गया है। इसमें सभी तरह की आतंकवादी गतिविधियों की भर्त्सना की गयी है। हिंसा के किसी धर्म, राष्ट्रीयता या नस्लीय समूह से जुड़ाव की भी भर्त्सना की गयी है।

फिलिस्तीन के मसले पर इजरायल से कहा गया है कि वह अपने अवैध कब्जे वाले इलाके खाली करे और न्यायपूर्ण एवं स्थायी शांति की दिशा में कार्य करे। इसमें संयुक्त राष्ट्र संघ में सुधार के पूर्ण क्रियान्वयन की बात की गयी है। साथ ही सुस्थिर विकास लक्ष्यों एवं बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली लागू करने पर जोर देते हुए विकासशील देशों के लिए बराबरी पर जोर दिया गया है। जलवायु परिवर्तन के मसले पर विकसित देशों से उनके वायदों को पूरा करने को कहा गया है। साथ ही विकासशील देशों को नयी तकनीकें उपलब्ध करवाने का आग्रह भी किया गया है। इसमें वैश्विक वित्तीय संस्थानों अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं विश्व बैंक को लोकतांत्रिक बनाने एवं निर्णय प्रक्रिया में सभी की भागीदारी की बात दोहरायी गयी है।

यदि सम्मेलन इन सब मसलों को गंभीरता से लेगा तो अंतर्राष्ट्रीय मामलों में सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। वैसे इनका क्रियान्वयन और भी चुनौतीपूर्ण है। अंततः इन मसलों पर एकता कायम हो गयी। कुल मिलाकर सम्मेलन अत्यन्त लाभदायक रहा। इसने सदस्य देशों को अपने हालातों पर पुनर्विचार और साझा निर्णय हेतु प्रोत्साहित भी किया। आर्थिक और राजनीतिक रूप से चुनौतीपूर्ण समय में गुटनिरपेक्ष आंदोलन सम्मेलन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ है। ❑

गतिविधियां एवं समाचार

गांधी शहादत दिवस मनाया गया :

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने देश में सबसे पहले आजादी के आंदोलन झंडा गाड़ा। जीवन में सादगी को अपनाया, पहनने का तरीका, सोचने का तरीका, रहने का तरीका सीखा और 'सादा जीवन उच्च विचार' को चरितार्थ किया। स्वदेशी परम्पराओं को जीने का तरीका बताया, जिससे पश्चिमी संस्कृति युवाओं पर हावी ना हो सके। महात्मा कहना आसान है, लेकिन महात्मा बनने के लिए अपने स्वयं में झांकना पड़ता है और कुर्बानी देनी पड़ती है। ये बातें बापू बलिदान दिवस पर गांधी शांति प्रतिष्ठान केन्द्र की ओर से आयोजित सर्वधर्म प्रार्थना कार्यक्रम में बतौर मुख्य अतिथि मोहम्मद तय्यब अंसारी ने कही।

अध्यक्षीय उद्‌बोधन में समाजसेवी आशा बोथरा ने कहा कि देश में नये युग का सूत्रपात गांधी ने किया, स्वतंत्रता के बाद गांधी दर्शन, गांधी विचार और आचरण को राजनैतिक पार्टियों के नेताओं ने नहीं अपनाया, जिससे युवा वर्ग को सही मार्गदर्शन व नेतृत्व नहीं मिला, जिसका दुष्परिणाम आज देश भुगत रहा है। आज का दिन चिन्तन व प्रार्थना का है।

इस अवसर पर माधवकृष्ण डागा ने कहा कि गांधी के इतिहास पर हमें गर्व है, लेकिन युवा वर्ग का जुड़ाव कम है। देश में राजनीति, जातिवाद, परिवारवाद, धर्म के नाम पर युवा गांधी से दूरी बना रहा है। गांधी अपनी गलती को स्वीकार भी करते थे और उसे सुधारने की प्रवृत्ति रखते थे। युवा कार्यकर्ता रमेश जाखड़ ने कहा कि देश में गांधीजी के बारे में भ्रांतियां फैलाकर दुष्प्रचार किया जा रहा है, जिसे रोकने का दायित्व युवा वर्ग का है। गांधी नौजवानों को सत्य, अहिंसा के मार्ग पर ले जाने का प्रयत्न करते थे।

कार्यक्रम के प्रारंभ में हेना भट्टाचार्या ने 'तू ही राम है, तू रहीम है', डॉ. शैला माहेश्वरी ने 'वैष्णव जन तो तेने कहिए', डॉ. सुनील कुमार पारीक ने 'अखिया हरि दर्शन की प्यासी' भजन प्रस्तुत किये।

इस अवसर पर विशिष्ट अतिथि ब्रह्मसिंह चौहान, संगीतज्ञ सुनील पारीक, डॉ. शैला माहेश्वरी, युवा रामकिशोर जाखड़ को गांधी डायरी देकर सम्मानित किया गया। कार्यक्रम में प्रो. सुशीला बोहरा, डॉ. पद्मजा शर्मा, डॉ. ओमप्रकाश टाक, डॉ. कमल मोहनोत, नेमीचंद गहलोत, सुशील, देवेन्द्रनाथ मोदी, धर्मेश रूटिया, गौतम खण्डप्पा, महेन्द्र सिंह पुनिया, गिरधर मून्दड़ा, भोपालसा भण्डारी, बादलराज सिंघवी, जनसेवक सत्यनारायण गौड़, गीता भट्टाचार्या, हेमन्त परमार, मनोहर सिंह चौहान, इंसाफ खाँ, यशपाल सिंह, श्रवणकुमार ओझा, संध्या शुक्ला, आर्टिस्ट टिकम खण्डप्पा, राजलक्ष्मी भण्डारी, कमलेश आदि की उपस्थिति उल्लेखनीय रही। संचालन डॉ. भावेन्द्रशरद जैन ने किया।

–डॉ. भावेन्द्र शरद जैन

सरलाबहन की देशभक्ति पर गोष्ठी :

गांधीजी की अंग्रेज शिष्या सुश्री सरला बहन की पुण्य स्मृति में जिला सर्वोदय मंडल रायबरेली द्वारा उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर विचार गोष्ठी आयोजित की गयी। वक्ताओं ने सरलाबहन द्वारा गांधीजी के आदेश पर अल्मोड़ा जिले के कौसानी नामक सुरम्य स्थान पर महिला उत्थान, शराबबन्दी और खादी के प्रचार-प्रसार हेतु किये गये अखंड प्रयास की सराहना की। लक्ष्मी आश्रम कौसानी की स्थापना करके उन्होंने नारी शक्ति को स्वावलम्बी बनने की प्रेरणा दी।

सर्वोदय मंडल के अध्यक्ष कपिल भाई ने पूज्य सरला बहन से संबंधित कई अनुकरणीय संस्मरण सुनाये। रायबरेली में सर्वोदय के स्तम्भ श्री बद्रीभाई के निमंत्रण पर कई बार सरला बहन रायबरेली आयी थीं। उनकी गोष्ठियों की आज भी लोग याद करते हैं। कपिल भाई ने बताया कि लक्ष्मी आश्रम कौसानी की संचालिका सुश्री राधाबहन और अनाशक्ति आश्रम की संचालिका सुश्री कान्ति बहन पूरे उत्तराखंड में सरला बहन का संदेश गांव-गांव पहुंचा रही हैं।

वक्ताओं ने सर्व सेवा संघ से मांग की कि सरला बहन की अमर कृति लक्ष्मी आश्रम कौसानी को अपना आनुषंगिक प्रकोष्ठ घोषित करे। **–कपिल अवस्थी**

हर दरवाजे पहुंचायेंगे गांधी-विचार : बोले मुख्यमंत्री बिहार नीतीश कुमार

बिहार में शराबबंदी के लिए ऐतिहासिक मानव-शृंखला और गुरुगोविन्द जन्मोत्सव व प्रकाशोत्सव के सफल एवं भव्य आयोजन के बाद, अब चम्पारण सत्याग्रह शताब्दी वर्ष में जन-जन तक गांधी विचार पहुंचाने की नीतीश कुमार की घोषणा तीसरी एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घोषणा है, जिससे पूरे देश को एक नई दिशा मिल सकती है। –सं.

सर्व सेवा संघ द्वारा मोतीहारी में आयोजित चम्पारण शताब्दी सत्याग्रह सम्मेलन में भी मुख्यमंत्री भाग लेंगे।

बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने कहा कि चम्पारण सत्याग्रह के शताब्दी वर्ष पर हमारा उद्देश्य महात्मा गांधी के विचारों को लोगों को बताना और जेहन तक पहुंचाना है। हिंसा के इस माहौल में, विशेषकर युवाओं के बीच गांधी-विचार को पहुंचाना हमारी और समय की बड़ी आवश्यकता है। हम गांधीजी के विचारों को प्रमोट करना चाहते हैं। बिहार दिवस गांधीजी को समर्पित होगा। स्कूली छात्र-छात्राओं को बापू के विचारों की बुनियादी जानकारी होनी चाहिए। उनका व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व फोल्डर व पम्पलेट के जरिये जन-जन तक पहुंचाया जाय। हर गांव में पपेट्स (कठपुतली) के शो हो। आडियो-विडियो के माध्यमों का भरपूर इस्तेमाल हो। वे शुक्रवार 3 फरवरी को चम्पारण सत्याग्रह के शताब्दी वर्ष पर आयोजित होने वाले कार्यक्रमों के संदर्भ में एक उच्चस्तरीय बैठक को सम्बोधित कर रहे थे।

नीतीश ने कहा कि राष्ट्रीय विमर्श के इस कार्यक्रम को भव्य एवं अत्यन्त प्रभावकारी बनाना है। बैठक में इससे सम्बन्धित आधारभूत संरचना, शताब्दी वर्ष के 'लोगो' तथा अन्य बिन्दुओं पर चर्चा हुई। मुख्यमंत्री ने गांधी मैदान में स्थापित भव्य गांधी प्रतिमा का उपयोग 'लोगो' के रूप में करने पर बल दिया। बैठक में शिक्षा मंत्री डॉ. अशोक चौधरी, मुख्य सचिव अंजनि कुमार सिंह, विकास आयुक्त शिशिर सिन्हा, प्रधान सचिव शिक्षा आर. के. महाजन, प्रधान सचिव नगर विकास चैतन्य प्रकाश, प्रधान सचिव भवन निर्माण अमृतलाल मीणा, प्रधान सचिव सूचना एवं जनसम्पर्क बृजेश मेहरोत्रा, मुख्यमंत्री के प्रधान सचिव चंचल कुमार, प्रधान सचिव पर्यटन श्रीमती हरजीत कौर, सचिव ग्रामीण विकास अरविन्द चौधरी, मुख्यमंत्री के सचिव अतीश चन्द्रा व मनीष कुमार वर्मा, मुख्यमंत्री के विशेष कार्य पदाधिकारी गोपाल सिंह, सचिव गांधी संग्रहालय डॉ. रजी अहमद, जगजीवन राम शोध संस्थान के निदेशक श्रीकांत समेत कई अन्य मौजूद थे।

सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष महादेव भाई विद्रोही को मुख्यमंत्री ने अंतिम निर्णय के लिए इस उच्चस्तरीय बैठक में विशेष रूप से आमंत्रित किया था। अध्यक्ष ने मुख्यमंत्री नीतीश कुमार को चरखा, गांधी-साहित्य व सर्वोदय डायरी सहित सर्व सेवा संघ का मुखपत्र 'सर्वोदय जगत' भेंट में दी। अध्यक्ष के साथ ट्रस्टी एवं भूतपूर्व सांसद डॉ. रामजी सिंह, पटना महानगर सर्वोदय मंडल के अध्यक्ष एवं 'सर्वोदय जगत' के संपादक अशोक मोती, बिहार सर्वोदय मंडल के उपाध्यक्ष रमेश पंकज तथा मोतीहारी में सर्व सेवा संघ द्वारा आयोजित चम्पारण सत्याग्रह शताब्दी सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष एवं प्राचार्य एम. एस. कॉलेज, मोतीहारी डॉ. हरिनारायण ठाकुर उपस्थित थे।

बैठक में लिये गये निर्णयों के अनुसार गांधीवादी चिन्तकों व विचारकों का राष्ट्रीय विमर्श, हेरिटेज वाक, फिल्म डाक्यूमेंट्री, स्कूल कॉलेजों में इसका प्रदर्शन, संगोष्ठी, प्रखंड से लेकर राज्य स्तर तक छात्र-छात्राओं के बीच गांधीजी पर आधारित भाषण, लेख, कविता, पेंटिंग प्रतियोगिता, चम्पारण सत्याग्रह, राजकुमार शुक्ल, पीर मोहम्मद आदि तत्कालीन नेताओं पर शोध पुस्तकों का विमोचन, गांधीजी पर कॉफी-टेबुल बुक, राष्ट्रीय विमर्श के भाषण-लेखों की किताब का प्रकाशन, गांधीजी के संदेश के साथ घर-घर दस्तक देंगे, स्कूलों में गांधी-कथा वाचन, विजुअल आर्ट्स के ख्यात कलाकारों द्वारा कलाकृति, निर्माण व प्रदर्शनी गांधीजी को लेकर फिल्म फेस्टिवल, खादी, महिला सशक्तीकरण, नशामुक्ति, स्वयं सहायता समूह आदि से संबंधित कार्यक्रम, गांधीजी के संदेश, फिल्म आदि के साथ पूरे बिहार में रथ घूमेगा। खासकर पूर्वी चम्पारण व पश्चिम चम्पारण में सरकार के सात निश्चयों की योजनाओं को प्राथमिकता से पूरा किया जायेगा।

–अशोक मोती

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए महामंत्री, शेख हुसैन द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा प्रिन्टेक, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया, वाराणसी से मुद्रित। प्रधान संपादक : बिमल कुमार / संपादक : अशोक मोती।